।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ३७ ।।

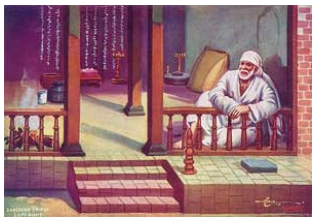

चावड़ी का समारोह

इस अध्याय में हम कुछ थोड़ी सी वेदान्तिक विषयों पर प्रारम्भिक दृष्टि से समालोचना कर चावड़ी के भव्य समारोह का वर्णन करेंगे।

प्रारम्भ

धन्य हैं श्रीसाई, जिनका जैसा जीवन था, वैसी ही अवर्णनीय लीला विलास और क्रियाओं से पूर्ण नित्य के कार्यक्रम भी। कभी तो वे समस्त सांसारिक कार्यों से अलिप्त रहकर कर्मकाण्डी से प्रतीत होते और कभी ब्रह्मानंद और कभी आत्मज्ञान में निमग्न रहा करते थे। कभी वे अनेक कार्य करते हुए भी उनसे असंबद्ध रहते थे। यद्यपि कभी कभी वे पूर्ण निष्क्रिय प्रतीत होते, तथापि वे आलसी नहीं थे। प्रशान्त महासागर की तरह सदैव जागरुक रहकर भी वे गंभीर, प्रशान्त और स्थिर दिखाई देते थे। उनकी प्रकृति का वर्णन तो सामर्थ्य से परे है।

यह तो सर्व विदित है कि वे बालब्रह्मचारी थे। वे सदैव पुरुषों को भ्राता तथा स्त्रियों को माता या बहन सदृश ही समझा करते थे। उनकी संगति द्वारा हमें जिस अनुपम ज्ञान की उपलब्धि हुई है, उसकी विस्मृति मृत्युपर्यन्त न होने पाए, ऐसी उनके श्रीचरणों में हमारी विनम्र प्रार्थना है। हम समस्त भूतों में ईश्वर का ही दर्शन करें और नामस्मरण की रसानुभूति करते हुए हम उनके मोहविनाशक चरणों की अनन्य भाव से सेवा करते रहें, यही हमारी आकांक्षा है।

हेमाड़पंत ने अपने दृष्टिकोण द्वारा आवश्यकतानुसार वेदान्त का विवरण देकर चावड़ी के समारोह का वर्णन निम्न प्रकार किया है:-

चावड़ी का समारोह

बाबा के शयनागार का वर्णन पहले ही हो चुका है। वे एक दिन मस्जिद में और दूसरे दिन चावड़ी में विश्राम किया करते थे और यह कार्यक्रम उनकी महासमाधि पर्यन्त चालू रहा। भक्तों ने चावड़ी में नियमित रुप से उनका पूजन-अर्चन १० दिसम्बर, सन् १९०९ से आरम्भ कर दिया था।

अब उनके चरणाम्बुओं का ध्यान कर, हम चावड़ी के समारोह का वर्णन करेंगे। इतना मनमोहक दृश्य था वह कि देखने वाले ठिठक-ठिठक कर रह जाते थे और अपनी सुध-बुध भूल यही आकांक्षा करते रहते थे कि यह दृश्य कभी हमारी आँखों से ओझल न हो। जब चावड़ी में विश्राम करने की उनकी नियमित रात्रि आती तो उस रात्रि को भक्तों का अपार जन-समुदाय मस्जिद के सभा मंडप में एकत्रित होकर घण्टों तक भजन किया करता था। उस मंडप के एक ओर सुसज्जित रथ रखा रहता था और दूसरी ओर तुलसी वृन्दावन था। सारे रसिक जन सभा-मंडप में ताल, चिपलिस, करताल, मृदंग, खंजरी और ढोल आदि नाना प्रकार के वाद्य लेकर भजन करना आरम्भ कर देते थे। इन सभी भजनानंदी भक्तों को चुम्बक की समान आकर्षित करनेवाले तो श्री साईबाबा ही थे।

मस्जिद के आँगन को देखो तो भक्त-गण बड़ी उमंगों से नाना प्रकार के मंगल-कार्य सम्पन्न करने में संलग्न थे। कोई तोरण बाँधकर दीपक जला रहे थे, तो कोई पालकी और रथ का श्रृंगार कर निशानादि हाथों में लिए हुए थे। कहीं-कहीं श्री साईबाबा की जयजयकार से आकाशमंडल गुंजित हो रहा था। दीपों के प्रकाश से जगमगाती मस्जिद ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो आज मंगलदायिनी दीपावली स्वयं शिरड़ी में आकर विराजित हो गई हो। मस्जिद के बाहर दृष्टिपात किया तो द्वार पर श्री साईबाबा का पूर्ण सुसज्जित घोड़ा श्यामसुंदर खड़ा था। श्री साईबाबा अपनी गादी पर शान्त मुद्रा में विराजित थे कि इसी बीच भक्त-मंडलीसहित तात्या पाटील ने आकर उन्हें

तैयार होने की सूचना देते हुए उठने में सहायता की। घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण तात्या पाटील उन्हें 'मामा' कहकर संबोधित किया करते थे। बाबा सदैव की भाँति अपनी वही कफनी पहन कर बगल में सटका दबाकर चिलम और तम्बाखू संग लेकर कन्धे पर एक कपड़ा डालकर चलने को तैयार हो गए। तभी तात्या पाटील ने उनके शीश पर एक सुनहरा जरी का शेला डाल दिया। इसके पश्चात् स्वयं बाबा ने धूनी को प्रज्वलित रखने के लिए उसमें कुछ लकड़ियाँ डालकर तथा धूनी के समीप के दीपक को बाएँ हाथ से बुझाकर चावड़ी को प्रस्थान कर दिया। अब नाना प्रकार के वाद्य बजने आरम्भ हो गए और उनसे भाँति-भाँति के स्वर निकलने लगे। सामने रंग-बिरंगी आतिशबाजी चलने लगी और नर-नारी भाँति-भाँति के वाद्य बजाकर उनकी कीर्ति के भजन गाते हुए आगे-आगे चलने लगे। कोई आनंद-विभोर को नृत्य करने लगा तो कोई अनेक प्रकार के ध्वज और निशान लेकर चलने लगे। जैसे ही बाबा ने समजिद की सीढ़ी पर अपने चरण रखे, वैसे ही भालदार ने ललकार कर उनके प्रस्थान की सूचना दी। दोनों ओर से लोग चँवर लेकर खड़े हो गए और उन पर पंखा झलने लगे फिर पथ पर दूर तक बिछे हुए कपड़ों के ऊपर से समारोह आगे पढ़ने लगा । तात्या पाटील उनका बायाँ तथा म्हालसापति दायाँ हाथ पकड़ कर तथा बापूसाहेब जोग उनके पीछे छत्र लेकर चलने लगे। इनके आगे-आगे पूर्ण सुसज्जित अश्व श्यामसुंदर चल रहा था हरि और उनके पीछे भजन मंडली तथा भक्तों का समूह वाद्यों की ध्वनि के संग हरि और साई नाम की ध्वनि, जिससे आकाश गूँज उठता था, उच्चारित करते हुए चल रहा था। अब समारोह चावड़ी के कोने पर पहुँचा और सारा जनसमुदाय अत्यन्त आनंदित तथा प्रफुल्लित दिखलाई पड़ने लगा। जब कोने पर पहुँचकर बाबा चावड़ी के सामने खड़े हो गए, उस समय उनके मुख-मंडल की दिव्यप्रभा बड़ी अनोखी प्रतीत होने लगी और ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो अरुणोदय के समय बाल रवि क्षितिज पर उदित हो रहा हो। उत्तराभिमुख होकर वे एक ऐसी मुद्रा में खड़े हो गए, जैसे कोई किसी के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा हो। वाद्य पूर्ववत् ही बजते रहे और वे अपना दाहिना हाथ थोड़ी देर ऊपर-नीचे उठाते रहे। वादक बड़े जोरों से वाद्य बजाने लगे और इसी समय काकासाहेब दीक्षित गुलाल और फूल चाँदी की थाली में लेकर सामने आए और बाबा के ऊपर पुष्प तथा गुलाल की वर्षा करने लगे। बाबा के मुखमंडल पर रक्तिम आभा जगमगाने लगी और सब लोग तृप्त-हृदय हो कर उस रस -माधुरी का आस्वादन करने लगे। इस मनमोहक दृश्य और अवसर का वर्णन शब्दों में करने में लेखनी असमर्थ है। भाव-विभोर होकर भक्त म्हलसापति तो मधुर नृत्य करने लगे, परन्तु बाबा की अभंग एकाग्रता देखकर सब भक्तों को महान् आश्चर्य होने लगा। एक हाथ में लालटेन लिये तात्या पाटील बाबा के बाँईं ओर और आभूषण लिए म्हालसापति दाहिनी ओर चले। देखो तो, कैसे सुन्दर समारोह की शोभा तथा भक्ति का दर्शन हो रहा है। इस दृश्य की झाँकी पाने के लिए ही सहस्त्रों नर-नारी, क्या अमीर और क्या फकीर, सभी वहाँ एकत्रित थे। अब बाबा मंद-मंद गति से आगे बढ़ने लगे और उनके दोनों ओर भक्तगण भक्तिभाव सहित, संग-संग चलने लगे और चारों और प्रसन्नता का वातावरण दिखाई पड़ने लगा। सम्पूर्ण वायुमंडल भी खुशी से झूम उठा और इस प्रकार समारोह चावड़ी पहुँचा। अब वैसा दृश्य भविष्य में कोई न देख सकेगा। अब तो केवल उसकी याद करके आँखों के सम्मुख उस मनोरम अतीत की कल्पना से ही अपने हृदय की प्यास शान्त करनी पड़ेगी।

चावड़ी की सजावट भी अति उत्तम प्रकार से की गई थी। उत्तम बढ़िया चाँदनी, शीशे और भाँति-भाँति के हाँडी-लालटेन (गैस बत्ती) लगे हुए थे। चावड़ी पहुँचने पर तात्या पाटील आगे बढ़े और आसन बिछाकर तकिये के सहारे उन्होंने बाबा को बैठाया। फिर उनको एक बढ़िया अँगरखा पहनाया और भक्तों ने नाना प्रकार से उनकी पूजा की, उन्हें स्वर्ण-मुकुट धारण कराया, तथा फूलों और जवाहरों की मालाएँ उनके गले में पहनाईं। फिर ललाट पर कस्तुरी का वैष्णवी तिलक तथा मध्य में बिन्दी लगाकर दीर्घ काल तक उनकी ओर अपलक निहारते रहे। उनके सिर का कपड़ा बदल दिया गया और उसे ऊपर ही उठाये रहे, क्योंकि सभी शंकित थे कि कहीं वे उसे फेंक न दें, परन्तु बाबा तो अन्तर्यामी थे और उन्होंने भक्तों को उनकी इच्छानुसार ही पूजन करने दिया। इन आभूषणों से सुसज्जित होने के उपरान्त तो उनकी शोभा अवर्णनीय थी।

नानासाहेब निमोणकर ने वृत्ताकार एक सुन्दर छत्र लगाया जिसके केंद्र में एक छड़ी लगी हुई थी। बापूसाहेब जोग ने चाँदी की एक सुन्दर थाली में पादप्रक्षालन किया और अर्घ्य देने के पश्चात् उत्तम विधि से उनका पूजन-अर्चन किया और उनके हाथों में चन्दन लगाकर पान का बीड़ा दिया। उन्हें आसन पर बिठलाया गया। फिर तात्या पाटील तथा अन्य सब भक्त-गण उनके श्री-चरणों पर अपने-अपने शीश झुकाकर प्रणाम करने लगे। जब वे तकिये के सहारे बैठ गए, तब भक्तगण दोनों ओर से चँवर और पंखे झलने लगे। शामा ने चिलम तैयार कर तात्या पाटील को दी। उन्होंने एक फूँक लगाकर चिलम प्रज्वलित की और उसे बाबा को पीने को दिया। उनके चिलम पी लेने के

पश्चात् फिर वह भगत म्हालसापति को तथा बाद में सब भक्तों को दी गई। धन्य है वह निर्जीव चिलम। कितना महान् तप है उसका, जिसने कुम्हार द्वारा पहले चक्र पर घुमाने, धूप में सुखाने, फिर अग्नि में तपाने जैसे अनेक संस्कार पाए। तब कहीं उसे बाबा के कर-स्पर्श तथा चुम्बन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जब यह सब कार्य समाप्त हो गया, तब भक्तगण ने बाबा को फूलमालाओं से लाद दिया और सुगन्धित फूलों के गुलदस्ते उन्हें भेंट किए। बाबा तो वैराग्य के पूर्ण अवतार थे और वे उन हीरे-जवाहरात व फूलों के हारों तथा इस प्रकार की सजधज में कब अभिरुचि लेने वाले थे? परन्तु भक्तों के सच्चे प्रेमवश ही, उनके इच्छानुसार पूजन करने में उन्होंने कोई आपत्ति न की। अन्त में मांगलिक स्वर में वाद्य बजने लगे और बापूसाहेब जोग ने बाबा की यथाविधि आरती की। आरती समाप्त होने पर भक्तों ने बाबा को प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर सब एक-एक करके अपने घर लौटने लगे। तब तात्या पाटील ने उन्हें चिलम पिलाकर गुलाब जल, इत्र इत्यादि लगाया और विदा लेते समय एक गुलाब का पुष्प दिया। तभी बाबा प्रेमपूर्वक कहने लगे कि '' तात्या, मेरी देखभाल भली भाँति करना। तुम्हें घर जाना है तो जाओ, परन्तु रात्रि में कभी-कभी आकर मुझे देख भी जाना।'' तब स्वीकारात्मक उत्तर देकर तात्या पाटील चावड़ी से अपने घर चले गए। फिर बाबा ने बहुत सी चादरें बिछाकर स्वयं अपना बिस्तर लगाकर विश्राम किया।

अब हम भी विश्राम करें और इस अध्याय को समाप्त करते हुए हम पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि **वे प्रतिदिन शयन के पूर्व श्री साईबाबा और चावड़ी के समारोह का ध्यान अवश्य कर लिया करें।**

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ३८ ।।

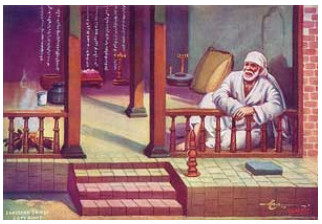

बाबा की हंडी, नानासाहेब द्वारा देव-मूर्त्ति की उपेक्षा, नैवेद्य वितरण, छाँछ का प्रसाद।

गत अध्याय में चावड़ी के समारोह का वर्णन किया गया है। अब इस अध्याय में बाबा की हंडी तथा कुछ अन्य विषयों का वर्णन होगा।

प्रस्तावना

हे सद्गुरु साई! तुम धन्य हो! हम तुम्हें नमन करते हैं। तुमने विश्व को सुख पहुँचाया और भक्तों का कल्याण किया। तुम उदार हृदय हो। जो भक्तगण तुम्हारे अभय चरण-कमलों में अपने को समर्पित कर देते हैं, तुम उनकी सदैव रक्षा एवं उद्धार किया करते हो। भक्तों के कल्याण और परित्राण के निमित्त ही तुम अवतार लेते हो। ब्रह्म के साँचे में शुद्ध आत्मारुपी द्रव्य ढाला गया और उसमें से ढलकर जो मूर्त्ति निकली, वही सन्तों के संत श्री साईबाबा हैं। साई स्वयं ही 'आत्माराम' और चिरआनन्द धाम हैं। इस जीवन के समस्त कार्यों को नश्वर जानकर उन्होंने भक्तों को निष्काम और मुक्त किया।

बाबा की हंडी

मानव धर्म-शास्त में भिन्न-भिन्न युगों के लिए भिन्न-भिन्न साधनाओं का उल्लेख किया गया है। **सतयुग में तप,त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में दान का विशेष माहात्म्य है। सर्व प्रकार के दानों में अन्नदान श्रेष्ठ है।** जब मध्याह्न के समय हमें भोजन प्राप्त नहीं होता, तब हम विचलित हो जाते हैं। ऐसी ही स्थिति अन्य प्राणियों की अनुभव कर जो किसी भिक्षुक या भूखे को भोजन देता है, वही श्रेष्ठ दानी है। तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है कि '' अन्न ही ब्रह्म है और उसीसे सब प्राणियों की-उत्पत्ति होती है तथा उससे ही वे जीवित रहते हैं और मृत्यु के उपरांत उसी में लय भी हो जाते हैं।'' जब कोई अतिथि दोपहर के समय अपने घर आता है तो हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम उसका अभिनंदन कर उसे भोजन कराएँ। अन्य दान जैसे-धन, भूमि और वस्त्र इत्यादि देने में तो पात्रता का विचार करना पड़ता है, परन्तु अन्न के लिए विशेष सोचविचार की आवश्यकता नहीं है। दोपहर के समय कोई भी अपने द्वार पर आए, उसे शीघ्र भोजन कराना हमारा परम कर्त्तव्य है। प्रथमतः लूले, लंगड़े, अन्धे या रुग्ण भिखारियों को; फिर उन्हें, जो हाथ पैर से स्वस्थ हैं और उन सभी के बाद अपने संबन्धियों को भोजन कराना चाहिए। अन्य सभी की अपेक्षा पंगुओ को भोजन कराने का महत्त्व अधिक है। अन्नदान के बिना अन्य सब प्रकार के दान वैसे ही अपूर्ण हैं, जैसे कि चन्द्रमा बिना तारे, पदक बिना हार, कलश बिना मन्दिर, कमलरहित तालाब, भक्तिरहित भजन, सिन्दूररहित सुहागिन, मधुर स्वरविहीन गायन, नमक बिना पक्वान्न। जिस प्रकार अन्य भोज्य पदार्थों में दाल उत्तम समझी जाती है, उसी प्रकार समस्त दानों में अन्नदान श्रेष्ठ है। अब देखें कि बाबा किस प्रकार भोजन तैयार कराकर उसका वितरण किया करते थे।

हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि बाबा अल्पाहारी थे और वे थोड़ा बहुत जो कुछ भी खाते थे, वह उन्हें केवल दो गृहों से ही भिक्षा में उपलब्ध हो जाया करता था। परन्तु जब उनके मन में सभी भक्तों को भोजन कराने की इच्छा होती तो प्रारम्भ से लेकर अन्त तक संपूर्ण व्यवस्था वे स्वयं किया करते थे। वे किसी पर निर्भर नहीं रहते थे और न ही किसी को इस संबंध में कष्ट ही दिया करते थे। प्रथमतः वे स्वयं बाजार जाकर सब वस्तुएँ-अनाज, आटा, नमक, मिर्ची, जीरा, खोपरा और अन्य मसाले आदि वस्तुएँ नगद दाम देकर खरीद लाया करते थे। यहाँ तक कि पीसने का कार्य भी वे स्वयं ही किया करते थे। मस्जिद के आँगन में ही एक भट्ठी बनाकर उसमें अग्नि प्रज्वलित करके हंडी के ठीक नाप से पानी भर देते थे। हंडी दो प्रकार की थी- एक छोटी और दूसरी बड़ी। एक में सौ और दूसरी में पाँच सौ व्यक्तियों का भोजन तैयार हो सकता था। कभी वे मीठे चावल बनाते और कभी मांसमिश्रित चावल(पुलाव) बनाते थे। कभी-कभी दाल और मुटकुले भी बना लेते थे। पत्थर की सिल पर महीन मसाला पीस कर

हंडी में डाल देते थे। भोजन रुचिकर बने, इसका वे भरसक प्रयत्न किया करते थे। ज्वार के आटे को पानी में उबाल कर उसमें छाँछ मिलाकर अंबिल (आमटी) बनाते और भोजन के साथ सब भक्तों को समान मात्रा में बाँट देते थे। भोजन ठीक बन रहा है या नहीं, यह जानने के लिए वे अपनी कफनी की बाँहें ऊपर चढ़ाकर निर्भय हो उबलती हंड़ी में हाथ डाल देते और उसे चारों ओर घुमाया करते थे। ऐसा करने पर भी उनके हाथ पर न कोई जलन का चिह्न और न चेहरे पर ही कोई व्यथा की रेखा प्रतीत हुआ करती थी। जब पूर्ण भोजन तैयार हो जाता, तब वे मस्जिद से बर्त्तन मँगाकर मौलवी से फातिहा पढ़ने को कहते थे; फिर वे म्हालसापति तथा तात्या पाटील के प्रसाद का भाग पृथक् रखकर शेष भोजन गरीब और अनाथ लोगों को खिलाकर उन्हें तृप्त करते थे। सचमुच वे लोग धन्य थे। कितने भाग्यशाली थे वे, जिन्हें बाबा के हाथ का बना और परोसा हुआ भोजन खाने को प्राप्त हुआ ?

यहाँ कोई यह शंका कर सकता है कि क्या वे शाकाहारी और मांसाहारी भोज्य पदार्थों का प्रसाद सभी को बाँटा करते थे? इसका उत्तर बिलकुल सीधा और सरल है। जो लोग मांसाहारी थे, उन्हें हण्डी में से दिया जाता था तथा शाकाहारियों को उसका स्पर्श तक न होने देते थे। न कभी उन्होंने किसी को मांसाहार का प्रोत्साहन ही दिया और न ही उनकी आंतरिक इच्छा थी कि किसी को इसके सेवन की आदत लग जाए। यह एक अति पुरातन अनुभूत नियम हैं कि **जब गुरुदेव प्रसाद वितरण कर रहे हों, तभी यदि शिष्य उसके ग्रहण करने में शंकित हो जाए तो उसका अधःपतन हो जाता है।** यह अनुभव करने के लिए कि शिष्य गण इस नियम का किस अंश तक पालन करते हैं, वे कभी-कभी परीक्षा भी ले लिया करते थे। उदाहरणार्थ एक एकादशी के दिन उन्होंने दादा केलकर को कुछ रुपए देकर कुछ मांस खरीद लाने को कहा। दादा केलकर पूरे कर्मकांडी थे और प्रायः सभी नियमों का जीवन में पालन किया करते थे। उनकी यह दृढ़ भावना थी कि द्रव्य, अन्न और वस्त्र इत्यादि गुरु को भेंट करना पर्याप्त नहीं है। केवल उनकी आज्ञा ही शीघ्र कार्यान्वित करने से वे प्रसन्न हो जाते हैं। यही उनकी दक्षिणा है। दादा शीघ्र कपड़े पहन कर एक थैला लेकर बाजार जाने के लिये उद्यत हो गए। तब बाबा ने उन्हें लौटा लिया और कहा कि तुम न जाओ, अन्य किसी को भेज दो। दादा ने अपने नौकर पाण्डू को इस कार्य के निमित्त भेजा। उसको जाते देखकर बाबा ने उसे भी वापस बुलाने को कहकर यह कार्यक्रम स्थगित कर दिया।

ऐसे ही एक अन्य अवसर पर उन्होंने दादा से कहा कि देखो तो नमकीन पुलाव कैसा पका है? दादा ने यूँही मुँहदेखी कह दिया कि अच्छा है। तब वे कहने लगे कि तुमने न अपनी आँखों से ही देखा और न जिह्वा से स्वाद लिया, फिर तुमने यह कैसे कह दिया कि उत्तम बना है? थोड़ा ढक्कन हटाकर तो देखो। बाबा ने दादा की बाँह पकड़ी और बलपूर्वक बर्त्तन में डालकर बोले- थोड़ासा इसमें से निकालो और अपना कट्टरपन छोड़कर चख कर देखो। जब माँ का सच्चा प्रेम बच्चे पर उमड़ आता है, तब माँ उसे चिमटी भरती है, परन्तु उसका चिल्लाना या रोना देखकर वह उसे अपने हृदय से लगाती है। इसी प्रकार बाबा ने सात्विक मातृप्रेम के वश हो दादा का इस प्रकार हाथ पकड़ा। यथार्थ में कोई भी सन्त या गुरु कभी भी अपने कर्मकांडी शिष्य को वर्जित भोज्य के लिए आग्रह करके अपनी अपकीर्त्ति कराना पसन्द न करेगा।

इस प्रकार यह हंडी का कार्यक्रम सन् १९१० तक चला और फिर स्थगित हो गया। जैसा पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, दास गणू ने अपने कीर्त्तन द्वारा समस्त बम्बई प्रांत में बाबा की अधिक कीर्त्ति फैलाई। फलतः इस प्रान्त से लोगों के झुंड के झुंड शिरड़ी को आने लगे और थोड़े ही दिनों में शिरड़ी पवित्र तीर्थ-क्षेत्र बन गया। भक्तगण बाबा को नैवेद्य अर्पित करने के लिए नाना प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थ लाते थे, जो इतनी अधिक मात्रा में एकत्र हो जाता था कि फकीरों और भिखारियों को सन्तोषपूर्वक भोजन कराने पर भी बच जाता था। नैवेद्य वितरण करने की विधि का वर्णन करने से पूर्व हम नानासाहेब चाँदोरकर की उस कथा का वर्णन करेंगे, जो स्थानीय देवी-देवताओं औंर मूर्त्तियों के प्रति बाबा की सम्मान-भावना की द्योतक है।

नानासाहेब द्वारा देव-मूर्त्ति की उपेक्षा

कुछ व्यक्ति अपनी कल्पना के अनुसार बाबा को ब्राह्मण तथा कुछ उन्हें यवन समझा करते थे, परन्तु वास्तव में उनकी कोई जाति न थी। उनकी और ईश्वर की केवल एक जाति थी। १ कोई भी निश्चयपूर्वक यह नहीं जानता कि वे किस कुल में जनमे और उनके मातापिता कौन थे। फिर उन्हें हिन्दू या यवन कैसे घोषित किया जा सकता है? यदि वे यवन होते तो मस्जिद में सदैव धूनी और तुलसी वृन्दावन ही क्यों लगाते और शंख, घण्टे तथा अन्य संगीत वाद्य क्यों बजने देते? हिन्दुओं की विविध प्रकार की पूजाओं को क्यों स्वीकार करते? यदि सचमुच यवन

होते तो उनके कान क्यों छिदे होते तथा वे हिन्दू मन्दिरों का स्वयं जीर्णोद्धार क्यों करवाते? उन्होंने हिन्दुओं की मूर्त्तियों तथा देवी-देवताओं की जरा सी उपेक्षा भी कभी सहन न की।

१. (क) जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजियो ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान।।
(ख) जाति पाँति पूँछै नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।। - तुलसी

एक बार नानासाहेब चाँदोरकर अपने साढू (साली के पति) श्री. बिनीवले के साथ शिरड़ी आए। जब वे मस्जिद में पहुँचे, बाबा वार्त्तालाप करते हुए अनायास ही क्रोधित होकर कहने लगे कि '' तुम दीर्घकाल से मेरे सान्निध्य में हो, फिर भी ऐसा आचरण क्यों करते हो?'' नानासाहेब प्रथमतः इन शब्दों का कुछ भी अर्थ न समझ सके। अतः उन्होंने अपना अपराध समझाने की प्रार्थना की। प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा कि '' तुम कब कोपरगाँव आए और फिर वहाँ से कैसे शिरड़ी आ पहुँचे?'' तब नानासाहेब को अपनी भूल तुरन्त ही ज्ञात हो गई। उनका यह नियम था कि शिरड़ी आने से पूर्व वे कोपरगाँव में गोदावरी के तट पर स्थित श्री दत्त का पूजन किया करते थे। परन्तु रिश्तेदार के दत्त-उपासक होने पर भी इस बार विलम्ब होने के भय से उन्होंने उनको भी दत्त मंदिर में जाने से हतोत्साहित किया और वे दोनों सीधे शिरड़ी चले आए थे। अपना दोष स्वीकार कर उन्होंने कहा कि '' गोदावरी में स्नान करते समय पैर में एक बड़ा काँटा चुभ जाने के कारण अधिक कष्ट हो गया था।'' बाबा ने कहा कि '' यह तो बहुत छोटासा दंड था'' और उन्हें भविष्य में ऐसे आचरण के लिए सदैव सावधान रहने की चेतावनी दी।

नैवेद्य-वितरण

अब हम नैवेद्य-वितरण का वर्णन करेंगे। आरती समाप्त होने पर बाबा से आशीर्वाद तथा उदी प्राप्त कर जब भक्तगण अपने-अपने घर चले जाते, तब बाबा परदे के भीतर प्रवेश कर निम्बर के सहारे पीठ टेककर भोजन के लिए आसन ग्रहण करते थे। भक्तों की दो पंक्तियाँ उनके समीप बैठा करती थीं। भक्तगण नाना प्रकार के नैवेद्य, पूरी, माण्डे, पेड़ा, बर्फी, बासुंदी उपमा (सांजा) अम्बे मोहर (भात) इत्यादि थाली में सजा-सजा कर लाते और जब तक वे नैवेद्य स्वीकार न कर लेते, तब तक भक्तगण बाहर ही प्रतीक्षा किया करते थे। समस्त नैवेद्य एकत्रित कर दिया जाता, तब वे स्वयं ही भगवान् को नैवेद्य अर्पण कर स्वयं ग्रहण करते थे। उसमें से कुछ भाग बाहर प्रतीक्षा करने वालों को देकर शेष भीतर बैठे हुए भक्त पा लिया करते थे। जब बाबा सबके मध्य में आ विराजते, तब दोनों पंक्तियों में बैठे हुए भक्त तृप्त होकर भोजन किया करते थे। बाबा प्रायः शामा और निमोणकर से भक्तों को अच्छी तरह भोजन कराने और प्रत्येक की आवश्यकता का सावधानपूर्वक ध्यान रखने को कहते थे। वे दोनों भी इस कार्य को बड़ी लगन और हर्ष से करते थे। इस प्रकार प्राप्त प्रत्येक ग्रास भक्तों को पोषक और सन्तोषदायक होता था। कितना मधुर, पवित्र, प्रेमरसपूर्ण भोजन था वह? सदा मांगलिक और पवित्र।

छाँछ (मट्ठा) का प्रसाद

इस सत्संग में बैठकर एक दिन जब हेमाडपंत पूर्णतः भोजन कर चुके, तब बाबा ने उन्हें एक प्याला छाँछ पीने को दिया। उसके श्वेत रंग से वे प्रसन्न तो हुए, परन्तु उदर में जरा सी भी गुंजाइश न होने के कारण उन्होंने केवल एक घूँट ही पिया। उनका यह उपेक्षात्मक व्यवहार देखकर बाबा ने कहा कि '' सब पी जाओ। ऐसा सुअवसर अब कभी न पाओगे।'' तब उन्होंने पूरी छाँछ पी ली, किन्तु उन्हें बाबा के सांकेतिक वचनों का मर्म शीघ्र ही विदित हो गया, क्योंकि इस घटना के थोड़े दिनों के पश्चात् ही बाबा समाधिस्थ हो गए।

पाठको! अब हमें अवश्य ही हेमाड़पंत के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि उन्होंने तो छाँछ का प्याला पिया, परन्तु वे हमारे लिए यथेष्ठ मात्रा में श्री साई-लीला रुपी अमृत दे गए। आओ, हम उस अमृत के प्याले पर प्याल पीकर सन्तुष्ट और सुखी हो जाएँ।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ३९ ।।

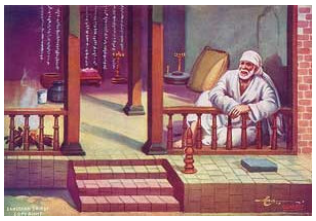

बाबा का संस्कृत ज्ञान। गीता के एक श्लोक की बाबा द्वारा टीका, समाधि मन्दिर का निर्माण।

इस अध्याय में बाबा ने गीता के एक श्लोक का अर्थ समझाया है। कुछ लोगों की ऐसी धारणा थी कि बाबा को संस्कृत भाषा का ज्ञान न था और नानासाहेब की भी उनके प्रति ऐसी ही धारणा थी। इसका खंडन हेमाड़पंत ने मूल मराठी ग्रंथ के ५० वें अध्याय में किया है। दोनों अध्यायों का विषय एक-सा होने के कारण वे यहाँ सम्मिलित रुप में लिखे जाते हैं।

प्रस्तावना

शिरड़ी के सौभाग्य का वर्णन कौन कर सकता है? श्री द्वारकामाई भी धन्य हैं, जहाँ श्री साई ने आकर निवास किया और वहीं समाधिस्थ हुए।

शिरड़ी के नरनारी भी धन्य हैं, जिन्हें स्वयं साई ने पधारकर अनुगृहीत किया और जिनके प्रेमवश ही वे दूर से चलकर वहाँ आये। शिरड़ी तो पहले एक छोटा सा ग्राम था, परन्तु श्री साई के सम्पर्क से विशेष महत्त्व पाकर वह एक तीर्थ-क्षेत्र में परिणत हो गया।

शिरड़ी की नारियाँ भी परम भाग्यशालिनी हैं, जिनका उनपर असीम और अभिन्न विश्वास प्रशंसा के परे है। आठों प्रहर-कामकाज करते, पीसते, अनाज निकालते, गृहकार्य करते हुए वे उनकी कीर्त्ति का गुणगान किया करती थीं। उनके प्रेम की उपमा ही क्या हो सकती है? वे अत्यन्त मधुर गायन करती थीं, जिससे गायकों और श्रोतागण के मन को परम शांति मिलती थी।

बाबा द्वारा टीका

किसी को स्वप्न में भी ज्ञात न था कि बाबा संस्कृत के भी ज्ञाता हैं। एक दिन नानासाहेब चाँदोरकर को गीता के एक श्लोक का अर्थ समझाकर उन्होंने लोगों को विस्मय में डाल दिया। इसका संक्षिप्त वर्णन सेवानिवृत्त मामलतदार श्री. बी. व्ही. देव ने मराठी साईलीला पत्रिका के भाग ४, (स्फुट विषय पृष्ठ ५६३) में छपवाया है। इसका संक्षिप्त विवरण Sai Baba's charters and sayings पुस्तक के ६१ वें पृष्ठ पर और The Wonderous Saint Sai Baba के पृष्ठ ३६ पर भी छपा है। ये दोनों पुस्तकें श्री. बी. व्ही. नरसिंह स्वामी द्वारा रचित हैं। श्री. बी. व्ही. देव ने अंग्रेजी में तारीख २७-९-१९३६ को एक वक्तव्य दिया है, जो कि नरसिंह स्वामी द्वारा रचित पुस्तक के '' भक्तों के अनुभव, भाग ३'' में छपा गया है। श्री. देव को इस विषय की प्रथम सूचना नानासाहेब चाँदोरकर से प्राप्त हुई थी। इसलिए उनका कथन नीचे उद्धृत किया जाता है। नानासाहेब चाँदोरकर वेदान्त के विद्वान् विद्यार्थियों में से एक थे। उन्होंने अनेक टीकाओं के साथ गीता का अध्ययन भी किया था तथा उन्हें अपने इस ज्ञान का अहंकार भी था। उनका मत था कि बाबा संस्कृत भाषा से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इसीलिए बाबा ने उनके इस भ्रम का निवारण करने का विचार किया। यह उस समय की बात है, जब भक्तगण अल्प संख्या में आते थे। बाबा भक्तों से एकान्त में देर तक वार्त्तालाप किया करते थे। नानासाहेब इस समय बाबा की चरण-सेवा कर रहे थे और अस्पष्ट शब्दों में कुछ गुनगुना रहे थे।

बाबा - नाना, तुम धीरे-धीरे क्या कह रहो हो?
नाना - मैं गीता के एक श्लोक का पाठ कर रहा हूँ।
बाबा - कौन-सा श्लोक है वह?
नाना - यह भगवद्गीता का एक श्लोक है।
बाबा - जरा उसे उच्च स्वर में कहो।

तब नाना भगवद्गीता के चौथे अध्याय का ३४ वाँ श्लोक कहने लगेः-

'' तव्दिद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।''

बाबा - नाना, क्या तुम्हें इसका अर्थ विदित है?
नाना - जी, महाराज।
बाबा- यदि विदित है तो मुझे भी सुनाओ।
नाना - इसका अर्थ है-तत्त्व को जानने वाले ज्ञानी पुरुषों को भली प्रकार दंडवत् कर, सेवा और निष्कपट भाव से किए गए प्रश्न द्वारा उस ज्ञान को जान। वे ज्ञानी, जिन्हें सद्वस्तु (ब्रह्म) की प्राप्ति हो चुकी है, तुझे ज्ञान का उपदेश देंगे।
बाबा- नाना, मैं इस प्रकार का संकुल भावार्थ नहीं चाहता। मुझे तो प्रत्येक शब्द और उसका भाषांतरित उच्चारण करते हुए व्याकरणसम्मत अर्थ समझाओ।

अब नाना एक-एक शब्द का अर्थ समझाने लगे।

बाबा- नाना, क्या केवल साष्टांग नमस्कार करना ही पर्याप्त है?
नाना- नमस्कार करने के अतिरिक्त मैं 'प्रणिपात' का कोई दूसरा अर्थ नहीं जानता।
बाबा- 'परिप्रश्न' का क्या अर्थ है?
नाना- प्रश्न पूछना।
बाबा- 'प्रश्न' का क्या अर्थ है?
नाना- वही (प्रश्न पूछना)।
बाबा- यदि 'परिप्रश्न और 'प्रश्न' दोनों का अर्थ एक ही है, तो फिर व्यास ने'परि' उपसर्ग का प्रयोग क्यों किया? क्या व्यास की बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी?
नाना- मुझे तो 'परिप्रश्न' का अन्य अर्थ विदित नहीं है।
बाबा- 'सेवा?' किस प्रकार की सेवा से यहाँ आशय है?
नाना- वही जो हम लोग सदा आपकी करते रहते हैं।
बाबा- क्या यह 'सेवा' पर्याप्त है?
नाना-और इससे अधिक 'सेवा' का कोई विशिष्ट अर्थ मुझे ज्ञात नहीं है।
बाबा- दूसरी पंक्ति के ''उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं'' में क्या तुम 'ज्ञानं' शब्द के स्थान पर दूसरे शब्द का प्रयोग कर इसका अर्थ कह सकते हो?
नाना- जी हाँ।
बाबा- कौन सा शब्द?
नाना- अज्ञानम्।
बाबा- 'ज्ञानं' के बजाय उस शब्द को जोड़ कर क्या इस श्लोक का अर्थ निकलता है?
नाना- जी नहीं, शांकर भाष्य में इस प्रकार की कोई व्याख्या नहीं है।
बाबा- नहीं है, तो क्या हुआ? यदि 'अज्ञान' शब्द के प्रयोग से कोई उत्तम अर्थ निकल सकता है तो उसमें क्या आपत्ति है?
नाना- मैं नहीं जानता कि उसमें 'अज्ञान' शब्द का किस प्रकार प्रयोग होगा।
बाबा- कृष्ण ने अर्जुन को क्यों ज्ञानियों या तत्त्वदर्शियों को नमस्कार करने, उनसे प्रश्न पूछने और सेवा करने का उपदेश किया था? क्या स्वयं कृष्ण तत्वदर्शी नहीं थे? वस्तुतः स्वयं ज्ञान स्वरुप?
नाना- जी हाँ, वे ज्ञानावतार थे। परन्तु मुझे यह समझ में नहीं आता कि उन्होंने अर्जुन से अन्य ज्ञानियों के लिए क्यों कहा?
बाबा- क्या तुम्हारी समझ में नहीं आया?

अब नाना हतप्रभ हो गए। उनका घमंड चूर हो चुका था। तब बाबा स्वयं इस प्रकार अर्थ समझाने लगे।
ज्ञानियों को केवल साष्टांग नमस्कार करना पर्याप्त नहीं है। हमें सद्गुरु के प्रति अनन्य भाव से शरणागत होना चाहिए।

केवल प्रश्न पूछना पर्याप्त नहीं। किसी कुप्रवृत्ति या पाखंड, या वाक्य-जाल में फँसाने, या कोई त्रुटि निकालने की भावना से प्रेरित होकर प्रश्न नहीं करना चाहिए, वरन् प्रश्न उत्सुकतापूर्वक केवल मोक्ष या आध्यात्मिक पथ पर उन्नति प्राप्त करने की भावना से ही प्रेरित होकर करना चाहिए।
मैं तो सेवा करने या अस्वीकार करने में पूर्ण स्वतंत्र हूँ, जो ऐसी भावना से कार्य करता है, वह सेवा नहीं कही जा सक ती। उसे अनुभव करना चाहिए कि मुझे अपने शरीर पर कोई अधिकार नहीं है। इस शरीर पर तो गुरु का ही अधिकार है और केवल उनकी सेवा के निमित्त ही वह विद्यमान है।

इस प्रकार आचरण करने से तुम्हें सद्गुरु द्वारा ज्ञान की प्राप्ति हो जाएगी, जैसा कि पूर्व श्लोक में बताया गया है।

नाना को यह समझ में नहीं आ सका कि गुरु किस प्रकार 'अज्ञान' की शिक्षा देते हैं।

बाबा - ज्ञान का उपदेश कैसा है? अर्थात् भविष्य में प्राप्त होने वाली आत्मानुभूति की शिक्षा। अज्ञान का नाश करना ज्ञान है। (गीता के श्लोक १८-६६ [१] पर ज्ञानेश्वरी भाष्य की ओवी १३९६ में इस प्रकार वर्णन हैः- हे अर्जुन! यदि तुम्हारी निद्रा और स्वप्न भंग हो, तब तुम स्वयं हो। वह इसी प्रकार है। गीता के अध्याय ५-१६ के आगे टीका में लिखा हैः- क्या ज्ञान में अज्ञान नष्ट करने के अतिरिक्त कोई और भेद भी है?)

१. सर्वधर्मान्परित्यज्यं मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यमि मा शुचः ।। गीता १८ ।। ६६।।

अंधकार नष्ट करने का अर्थ प्रकाश है। जब हम द्वैत नष्ट करने की चर्चा करते हैं, तो हम अद्वैत की बात करते हैं। जब हम अंधकार नष्ट करने की बात करते हैं तो उसका अर्थ है कि प्रकाश की बात करते हैं। यदि हम अद्वैत की स्थिति का अनुभव करना चाहते हैं तो हमें द्वैत की भावना नष्ट करनी चाहिये। यही अद्वैत स्थिति प्राप्त होने का लक्षण है। द्वैत में रहकर अद्वैत की चर्चा कौन कर सकता है? जब तक वैसी स्थिति प्राप्त न हो, तब तक क्या उसका कोई अनुभव कर सकता है?

शिष्य श्री सद्गुरु के समान ही ज्ञान की मूर्ति है? उन दोनों में केवल अवस्था, उच्च अनुभूति, अद्भुत, अलौकिक सत्य, अद्वितीय योग्यता और ऐश्वर्य योग में भिन्नता होती है। सद्गुरु निर्गुण निराकार सच्चिदानंद है। वस्तुतः वे केवल मनुष्य जाति और विश्व के कल्याण के निमित्त स्वेच्छापूर्वक मानव शरीर धारण करते हैं, परन्तु नर-देह धारण करने पर भी उनकी सत्ता की अनंतता में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। उनकी आत्मोपलब्धि, लाभ, दैविक शक्ति और ज्ञान सदा एक-से रहते हैं। शिष्य का भी तो यथार्थ में वही स्वरुप है, परन्तु अनगिनत जन्मों के कारण उसे अज्ञान उत्पन्न हो जाता है और उसीके वशीभूत होकर उसे भ्रम हो जाता है तथा अपने शुद्ध चैतन्य स्वरुप की विस्मृति हो जाती है। गीता का अध्याय ५/१ देखो-''

१. नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।। गीता ५-१५।।

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।'' जैसा कि वहाँ बतलाया गया है, उसे भ्रम हो जाता है कि ''मैं'' जीव हूँ, एक प्राणी हूँ, दुर्बल और असहाय हूँ। गुरु इन अज्ञानरुपी जड़ को काटकर फेंक देता है और इसीलिए उसे उपदेश करना पड़ता है। ऐसे शिष्य को जो जन्म-जन्मांतरों से यह धारणा करता आया है कि '' मैं तो जीव, दुर्बल और असहाय हूँ, '' गुरु सैकड़ो जन्मों तक ऐसी शिक्षा देते हैं कि तुम ही ईश्वर हो, सर्वशक्तिमान् और समर्थ हो, तब कहीं जाकर उसे किंचित् मात्र भास होता है कि यथार्थ में '' मैं ही ईश्वर हूँ।'' सतत भ्रम में रहने के कारण

ही उसे ऐसा भास होता है कि '' मैं शरीर हूँ, एक जीव हूँ, तथा ईश्वर और यह विश्व मुझ से एक भिन्न वस्तु है।'' यह तो केवल एक भ्रम ही है, जो अनेक जन्म धारण करने के कारण उत्पन्न हो गया है। कर्मानुसार प्रत्येक प्राणी को सुखदुःख की प्राप्ति होती है। इस भ्रम, इस त्रुटि और अज्ञान की जड़ को नष्ट करने के लिये हमें स्वयं अपने से प्रश्न करना चाहिए कि यह अज्ञान कैसे पैदा हो गया? वह अज्ञान कहाँ है? और इस त्रुटि का दिग्दर्शन कराने को ही उपदेश कहते हैं।
अज्ञान के नीचे लिखे उदाहरण हैंः-

(१) मैं एक जीव (प्राणी) हूँ।
(२) शरीर ही आत्मा है। (मैं शरीर हूँ)
(३) ईश्वर, विश्व और जीव भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं।
(४) मैं ईश्वर नहीं हूँ।
(५) शरीर आत्मा नहीं है, इसका अबोध।
(६) इसका ज्ञान न होना कि ईश्वर, विश्व और जीव सब एक ही हैं।

जब तक इन त्रुटियों का उसे दिग्दर्शन नहीं कराया जाता, तब तक शिष्य को यह कभी अनुभव नहीं हो सकता कि ईश्वर, जीव और शरीर क्या हैं; उनमें क्या अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है तथा वे परस्पर भिन्न हैं या अभिन्न हैं अथवा एक ही हैं? इस प्रकार की शिक्षा देना और भ्रम को दूर करना ही 'अज्ञान' का ज्ञानोपदेश कहलाता है। अब प्रश्न यह है कि जीव जो स्वयं ज्ञान-मूर्त्ति है, उसे ज्ञान की क्या आवश्यकता है? उपदेश का हेतु तो केवल त्रुटि को उसकी दृष्टि मे लेकर अज्ञान को नष्ट करना है। बाबा ने आगे कहाः-

(१) ' प्रणिपात ' का अर्थ है ' शरणागति'।
(२) शरणागत होना चाहिए तन, मन, धन से (अर्थात् अनन्य भाव से)।
(३) कृष्ण अन्य ज्ञानियों की ओर क्यों संकेत करते हैं? सद्भक्त के लिए तो प्रत्येक तत्त्व वासुदेव है। (भगवद्गीता १ - अ. ७-१९ अर्थात् कोई भी गुरु अपने भक्त के लिए कृष्ण है) और गुरु शिष्य को वासुदेव मानता है और कृष्ण इन दोनों को अपने प्राण और आत्मा। (भगवद्गीता [२] अ. ७-१८ पर ज्ञानदेव की टीका) चूँकि श्रीकृष्ण को विदित था कि ऐसे अनेक भक्त और गुरु विद्यमान हैं, इसलिए उनका महत्त्व बढाने के लिए ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन से ऐसा उल्लेख किया ।

१. बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।। गीता ७।।१९।।
२. उदारः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम ।। गीता ७ ।। १८।।

समाधि - मन्दिर का निर्माण

बाबा जो कुछ करना चाहते थे, उसकी चर्चा वे कभी नहीं करते थे, प्रत्युत आसपास ऐसा वातावरण और परिस्थिति निर्माण कर देते थे कि लोगों को उनका बाद मे निश्चित परिणाम देखकर बडा अचम्भा होता था। समाधि होता था। समाधि-मन्दिर इस विषय का उदाहरण है। नागपुर के प्रसिद्ध लक्षाधिपति श्रीमान् बापूसाहेब बूटी सहकुटुम्ब शिरड़ी में रहते थे। एक बार उन्हें विचार आया कि शिरड़ी में स्वयं का एक वाड़ा होना चाहिए। कुछ समय के पश्चात् जब वे दीक्षित वाड़े में निद्रा ले रहे थे तो उन्हें एक स्वप्न हुआ। बाबा ने स्वप्न में आकार उनसे कहा कि '' तुम अपना एक वाड़ा और एक मन्दिर बनवाओ। '' शामा भी वहीं शयन कर रहा था और उसने भी ठीक वैसा ही स्वप्न देखा। बापूसाहेब जब उठे तो उन्होंने शामा को रुदन करते देखकर उससे रोने का कारण पूछा। तब शामा कहने लगाः-

'' अभी-अभी मुझे एक स्वप्न आया था कि बाबा मेरे बिलकुल समीप आए और स्पष्ट शब्दों में कहने लगे कि '' मन्दिर के साथ वाड़ा बनवाओ। मैं समस्त भक्तों की इच्छाएँ पूर्ण करुँगा। '' बाबा के मधुर और प्रेमपूर्ण शब्द सुनकर मेरा प्रेम उमड़ पड़ा तथा गला रुँध गया और मेरी आँखों से अश्रुओं की धारा बहने लगी। इसलिए मैं जोर

से रोने लगा।'' बापूसाहेब बूटी को आश्चर्य हुआ कि दोनों के स्वप्न एक से ही हैं। धनाढ्य तो वे थे ही, उन्होंने वाड़ा निर्माण करने का निश्चय कर लिया और शामा के साथ बैठकर एक नक्शा खींचा। काकासाहेब दीक्षित ने भी उसे स्वीकृत किया और जब नक्शा बाबा के सामने प्रस्तुत किया गया तो उन्होंने भी तुरंत स्वीकृति दे दी। तब निर्माण कार्य प्रारम्भ कर दिया गया और शामा की देखरेख में नीचे की मंजिल, तहखाना और कुआँ बनकर तैयार हो गए। बाबा भी लेंडी को आते-जाते समय परामर्श दे दिया करते थे। आगे यह कार्य बापूसाहेब जोग को सौंप दिया गया। जब कार्य इसी तरह चल ही रहा था, उसी समय बापूसाहेब जोग को एक विचार आया कि कुछ खुला स्थान भी अवश्य होना चाहिए, जिसके बीचोंबीच ' मुरलीधर' की मूर्त्ति की भी स्थापना की जाए। उन्होंने अपना विचार शामा को प्रकट किया तथा बाबा से अनुमति प्राप्त करने को कहा। जब बाबा वाड़े के पास से जा रहे थे, तभी शामा ने बाबा से प्रश्न कर दिया । शामा का प्रश्न सुनकर बाबा ने स्वीकृति देते हुए कहा कि '' जब मन्दिर का कार्य पूर्ण हो जाएगा, तब मैं स्वयं वहाँ निवास करुँगा, '' और वाड़े की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा '' जब वाडा सम्पूर्ण बन जाएगा, तब हम सब लोग उसका उपभोग करेंगे। वहीं रहेंगे, घूमेंगे, फिरेंगे और एक दूसरे को हृदय से लगायेंगे तथा आनन्दपूर्वक विचरेंगे।'' जब शामा ने बाबा से पूछा कि क्या यह मूर्त्ति के मध्ये कक्ष की नींव के कार्य आरम्भ का शुभ मुहूर्त्त है? तब उन्होंने स्वीकारत्मक उत्तर दे दिया । तभी शामा ने एक नारियल लाकर फोड़ा और कार्य प्रारम्भ कर दिया। ठीक समय में सब कार्य पूर्ण हो गया और ' मुरलीधर' की एक सुन्दर मूर्त्ति बनवाने का प्रबन्ध किया गया। अभी उसका निर्माण कार्य प्रारम्भ भी न हो पाया था कि एक नवीन घटना घटित हो गई । बाबा की स्थिति चिंताजनक हो गई और ऐसा दिखने लगा कि वे अब देह त्याग देंगे। बापूसाहेब बहुत उदास और निराश से हो गए। उन्होंने सोचा कि यदि बाबा चले गए तो वाड़ा उनके पवित्र चरण-स्पर्श से वंचित रह जाएगा और मेरा सब (लगभग एक लाख) रुपया व्यर्थ हो जाएगा, परन्तु अंतिम समय बाबा के श्री मुख से निकले हुए वचनोंने (''मुझे वाड़े में ही रखना'') केवल बूटीसाहेब को ही सान्त्वना नहीं पहुँचाई, वरन् अन्य लोगों को भी शांति मिली। कुछ समय के पश्चात् बाबा का पवित्र शरीर मुरलीधर की मूर्त्ति के स्थान पर रख दिया गया। बाबा स्वयं ' मुरलीधर' बन गए और वाड़ा'साईबाबा का समाधि मंदिर'।

उनकी अगाध लीलाओं की थाह कोई न पा सका। श्री. बापूसाहेब बूटी धन्य हैं, जिनके वाड़े में बाबा का दिव्य और पवित्र पार्थिव शरीर अब विश्राम कर रहा है।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ४० ।।

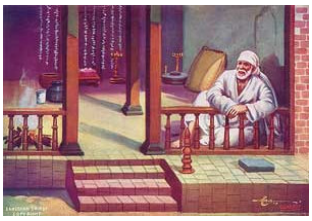

श्री साईबाबा की कथाएँ

(१) श्री. बी.व्ही. देव की माता के उद्यापन उत्सव में सम्मिलित होना, और (२) हेमाड़पंत के भोजन-समारोह में चित्र के रुप में प्रगट होना।

इस अध्याय में दो कथाओं का वर्णन है:
(१) बाबा किस प्रकार श्रीमान् देव की माँ के यहाँ उद्यापन में सम्मिलित हुए । और (२) बाबा किस प्रकार होली त्योहार के भोजन समारोह के अवसर पर बाँद्रा में हेमाड़पंत के गृह पधारे।

प्रस्तावना

श्री साई समर्थ धन्य हैं, जिनका नाम बड़ा सुन्दर है! वे सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों ही विषयों में अपने भक्तों को उपदेश देते हैं और भक्तों को अपना जीवनध्येय प्राप्त करने में सहायता प्रदान कर उन्हें सुखी बनाते हैं। **श्री साई अपना वरद हस्त भक्तों के सिर पर रखकर उन्हें अपनी शक्ति प्रदान करते हैं।** वे भेदभाव की भावना को नष्ट कर उन्हें अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति कराते हैं। भक्त लोग साई के चरणों पर भक्तिपूर्वक गिरते हैं और श्री साईबाबा भी भेदभावरहित होकर प्रेमपूर्वक भक्तों को हृदय से लगाते हैं। वे भक्तगण में ऐसे सम्मिलित हो जाते हैं, जैसे वर्षाऋतु में समुद्र नदियों से मिलता तथा उन्हें अपनी शक्ति और मान देता है।

श्रीमती देव का उद्यापन उत्सव

श्री. बी.व्ही. देव डहाणू (जिला ठाणे) में मामलतदार थे। उनकी माता ने लगभग पच्चीस या तीस व्रत लिए थे, इसलिए अब उनका उद्यापन करना आवश्यक था। उद्यापन के साथ-साथ सौ-दो सौ ब्राह्मणों का भोजन भी होने वाला था। श्री देव ने एक तिथि निश्चित कर बापूसाहेब जोग को एक पत्र शिरड़ी भेजा । उसमें उन्होंने लिखा कि '' तुम मेरी ओर से श्री साईबाबा को उद्यापन और भोजन में सम्मिलित होने का निमंत्रण दे देना और उनसे प्रार्थना करना कि उनकी अनुपस्थिति में उत्सव अपूर्ण ही रहेगा। मुझे पूर्ण आशा है कि वे अवश्य डहाणू पधार कर दास को कृतार्थ करेंगे ।'' बापूसाहेब जोग ने बाबा को वह पत्र पढ़कर सुनाया। उन्होंने उसे ध्यानपूर्वक सुना और शुद्ध हृदय से प्रेषित निमंत्रण जानकर वे कहने लगे कि **'' जो मेरा स्मरण करता है, उसका मुझे सदैव ही ध्यान रहता है। मुझे यात्रा के लिए कोई भी साधन - गाड़ी, ताँगा या विमान की आवश्यकता नहीं है। मुझे तो जो प्रेम से पुकारता है, उसके सम्मुख मैं अविलम्ब ही प्रगट हो जाता हूँ।''** उसे एक सुखद पत्र भेज दो कि मैं और दो व्यक्तियों के साथ अवश्य आऊँगा। जो कुछ बाबा ने कहा था, जोग ने श्री. देव को पत्र में लिखकर भेज दिया। पत्र पढ़कर देव को बहुत प्रसन्नता हुई, परन्तु उन्हें ज्ञात था कि बाबा केवल राहाता , रुई और नीमगाँव के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं जाते हैं। फिर उन्हें विचार आया कि उनके लिए क्या असंभव है? उनकी जीवनी अपार चमत्कारों से भरी हुई है। वे तो सर्वव्यापी हैं। वे किसी भी वेश में अनायास ही प्रगट होकर अपना वचन पूर्ण कर सकते हैं।

उद्यापन के कुछ दिन पूर्व एक संन्यासी डहाणू स्टेशन पर उतरा, जो बंगाली संन्यासियों के समान वेशभूषा धारण किए हुए था। दूर से देखने में ऐसा प्रतीत होता था कि वह गौरक्षा संस्था का स्वयंसेवक है। वह सीधा स्टेशनमास्टर के पास गया और उनसे चंदे के लिए निवेदन करने लगा। स्टेशनमास्टर ने उसे सलाह दी कि तुम यहाँ के मामलेदार के पास जाओ और उनकी सहायता से ही तुम यथेष्ठ चंदा प्राप्त कर सकोगे । ठीक उसी समय मामलेदार भी वहाँ पहुँच गए। तब स्टेशन मास्टर ने संन्यासी का परिचय उनसे कराया और वे दोनों स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर बैठे वार्त्तालाप करते रहे। मामलेदार ने बताया कि यहाँ के प्रमुख नागरिक श्री. रावसाहेब नरोत्तम सेठी ने धर्मार्थ कार्य के निमित्त चन्दा एकत्र करने की एक नामावली बनाई है। अतः अब एक और दूसरी नामावली

बनाना कुछ उचित सा प्रतीत नहीं होता। इसलिए श्रेयस्कर तो यही होगा कि आप दो-चार माहे के पश्चात् पुनः यहाँ दर्शन दें। यह सुनकर संन्यासी वहाँ से चला गया और एक माह पश्चात् श्री. देव के घर के सामने ताँगे से उतरा। तब उसे देखकर देव ने मन ही मन सोचा कि वह चन्दा माँगने ही आया है। उसने श्री. देव को कार्यव्यस्त देखकर उनसे कहा '' श्रीमान् ! मैं चन्दे के निमित्त नहीं, वरन् भोजन करने के लिए आया हूँ। '' देव ने कहा '' बहुत आनन्द की बात है, आपका सहर्ष स्वागत है।''

संन्यासी - मेरे साथ दो बालक और हैं।

देव - तो कृपया उन्हें भी साथ ले आइए।

भोजन में अभी दो घण्टे का विलम्ब था। इसलिये देव ने पूछा - यदि आज्ञा हो तो मैं किसी को उनकी बुलाने को भेज दूँ।

संन्यासी - आप चिंता न करें, मै निश्चित समय पर उपस्थित हो जाऊँगा। देव ने उनसे दोहर में पधारने की प्रार्थना। ठीक १२ बजे दोपहर को तीन मूर्तियाँ वहाँ पहुँचीं और भोज में सम्मिलित होकर भोजन करके वहाँ से चली गईं ।

उत्सव समाप्त होने पर देव ने बापूसाहेब जोग को पत्र में उलाहना देते हुए बाबा पर वचन-भंग करने का आरोप लगाया। जोग वह पत्र लेकर बाबा के पास गए, परन्तु पत्र पढ़ने के पूर्व ही बाबा उनसे कहने लगे- '' अरे! मैंने वहाँ जाने का वचन दिया था तो मैंने उसे धोखा नहीं दिया । उसे सूचित करो कि मैं अन्य दो व्यक्तियों के साथ भोजन में उपस्थित था, परन्तु जब वह मुझे पहचान ही न सका, तब निमंत्रण देने का कष्ट ही क्यों उठाया था? उसे लिखो कि उसने सोचा होगा कि वह संन्यासी चन्दा माँगने आया है। परन्तु क्या मैंने उसका सन्देह दूर नहीं कर दिया था कि दो अन्य व्यक्तियों के साथ मैं भोजन के लिए आऊँगा और क्या वे त्रिमूर्तियाँ ठीक समय पर भोजन में सम्मिलित नहीं हुईं? देखों ! **मैं अपना वचन पूर्ण करने के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर दूँगा। मेरे शब्द कभी असत्य न निकलेंगे। ''** इस उत्तर से जोग के हृदय में बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होंने पूर्ण उत्तर लिखकर देव को भेज दिया। जब देव ने उत्तर पढ़ा तो उनकी आँखों से अश्रुधाराएँ प्रवाहित होने लगीं। उन्हें अपने आप पर बढ़ा क्रोध आ रहा था कि मैंने व्यर्थ ही बाबा पर दोषारोपण किया। वे आश्चर्यचकित से हो गये कि किस तरह मैने संन्यासी की पूर्व यात्रा से धोखा खाया, जो कि चन्दा माँगने आया था और संन्यासी के शब्दों का अर्थ भी न समझ पाया कि '' अन्य दो व्यक्तियों के साथ मैं भोजन को आऊँगा । ''

इस कथा से विदित होता है कि **जब भक्त अनन्य भाव से सद्गुरु की शरण में आता है, तभी उसे अनुभव होने लगता है कि उसके सब धार्मिक कृत्य उत्तम प्रकार से चलते और निर्विघ्न समाप्त होते रहते हैं।**

हेमाड़पन्त का होली त्यौहार पर भोजन -समारोह

अब हम एक दूसरी कथा लें, जिसमें बतलाया गया है कि बाबा ने किस प्रकार चित्र के रुप में प्रगट हो कर अपने भक्तों की इच्छा पूर्ण की।

सन् १९१७ में होली पूर्णिमा के दिन हेमाड़पंत को एक स्वप्न हुआ। बाबा उन्हें एक संन्यासी के वेश में दिखे और उन्होंने हेमाड़पंत को जगाकर कहा कि '' मैं आज दोपहर को तुम्हारे यहाँ भोजन करने आऊँगा । '' जागृत करना भी स्वप्न का एक भाग ही था। परन्तु जब उनकी निद्रा सचमुच में भंग हुई तो उन्हें न तो बाबा और न कोई अन्य संन्यासी ही दिखाई दिया। वे अपनी स्मृति दौड़ाने लगे और अब उन्हे संन्यासी के प्रत्येक शद्ब की स्मृति हो आई । यद्यपि वे बाबा के सान्निध्य का लाभ गत सात वर्षो से उठा रहे थे तथा उन्हीं का निरंतर ध्यान किया करते थे, परंतु यह कभी भी आशा न थी कि बाबा भी कभी उनके घर पधार कर भोजन कर उन्हें कृतार्थ करेंगे । बाबा के शब्दों से अति हर्षित होते हुए वे अपनी पत्नी के समीप गए और कहा कि '' आज होली का दिन है। एक संन्यासी अतिथि भोजन के लिये अपने यहाँ पधारेंगे। इसलिए भात थोड़ा अधिक बनाना। उनकी पत्नी ने अतिथि के सम्बन्ध में पूछताछ की। प्रत्युत्तर में हेमाडपंत ने बात गुप्त न रखकर स्वप्न का वृत्तान्त सत्य-सत्य बतला दिया। तब वे सन्देहपूर्वक पूछने लगीं कि क्या यह भी कभी संभव है कि वे शिरड़ी के उत्तम पक्वान्न त्यागकर इतनी दूर बान्द्रा में अपना रुखा-सूखा भोजन करने को पधारेंगे ? हेमाड़पंत ने विश्वास दिलाया कि उनके लिये क्या असंभव है? हो सकता है, वे स्वयं न आएँ और कोई अन्य स्वरुप धारण कर यहाँ पधारें । इस कारण थोड़ा अधिक भात बनाने में हानि ही क्या है? इसके उपरान्त भोजन की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गई ।होलिका पूजन प्रारम्भ हो गया और पत्तलें बिछाकर उनके चारों ओर राँगोली डाल दी गई । दो पंक्तियाँ बनाई गई और बीच में अतिथि के लिए स्थान छोड़ दिया गया। घर के सभी कुटुम्बी-पुत्र, नाती, लड़कियाँ, दामाद इत्यादि ने अपना-अपना स्थान ग्रहण कर

लिया और भोजन परोसना भी प्रारम्भ हो गया। जब भोजन परोसा जा रहा था तो प्रत्येक व्यक्ति उस अज्ञात अतिथि की उत्सुकतापूर्वक राह देख रहा था। जब मध्याह्न भी हो गया और कोई भी न आया, तब द्वार बन्द कर साँकल चढ़ा दी गई। अन्न शुद्धि के लिए घृत वितरण हुआ, जो कि भोजन प्रारम्भ करने का संकेत है। वैश्वदेव (अग्नि) को औपचारिक आहुति देकर श्रीकृष्ण को नैवद्य अर्पण किया गया। फिर सभी लोग जैसे ही भोजन प्रारम्भ करने वाले थे कि इतने में सीढ़ी पर किसी के चढ़ने की आहट स्पष्ट आने लगी। हेमाडपंत ने शीघ्र उठकर साँकल खोली और दो व्यक्तियों (१) अली मुहम्मद और (२) मौलाना हस्मू मुजावर को द्वार पर खड़े हुए पाया। इन लोगों ने जब देखा कि भोजन परोसा जा चुका है और केवल प्रारम्भ करना ही शेष है तो उन्होंने विनीत भाव में कहा कि आपको बड़ी असुविधा हुई, इसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। आप अपनी थाली छोड़कर दौड़े आये हैं तथा अन्य लोग भी आपकी प्रतीक्षा में हैं, इसलिए आप अपनी यह संपदा सँभालिए। इससे सम्बन्धित आश्चर्यजनक घटना किसी अन्य सुविधाजनक अवसर पर सुनाएँगे - ऐसा कहकर उन्होंने पुराने समाचार पत्रों में लिपटा हुआ एक पैकेट निकालकर उसे खोलकर मेज पर रख दिया। कागज के आवरण को ज्यों ही हेमाड़पंत ने हटाया तो उन्हें बाबा का एक बड़ा सुन्दर चित्र देखकर महान् आश्चर्य हुआ। बाबा का चित्र देखकर वे द्रवित हो गए। उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा प्रवाहित होने लगी और उनके समूचे शरीर में रोमांच हो आया। उनका मस्तक बाबा के श्री चरणों पर झुक गया। वे सोचने लगे कि बाबा ने इस लीला के रुप में ही मुझे आशीर्वाद दिया है। कौतूहलवश उन्होंने अली मुहम्मद से प्रश्न किया कि बाबा का यह मनोहर चित्र आपको कहाँ से प्राप्त हुआ? उन्होंने बताया कि मैंने इसे एक दूकान से खरीदा था। इसका पूर्ण विवरण मैं किसी अन्य समय के लिए शेष रखता हूँ। कृपया आप अब भोजन कीजिए, क्योंकि सभी आपकी ही प्रतीक्षा कर रहे है। हेमाड़पंत ने उन्हें धन्यवाद देकर नमस्कार किया और भोजन गृह में आकर अतिथि के स्थान पर चित्र को मध्ये में रखा तथा विधिपूर्वक नैवेद्य अर्पण किया। सब लोगों ने ठीक समय पर भोजन प्रारम्भ कर दिया ।चित्र में बाबा का सुन्दर मनोहर रुप देखकर प्रत्येक व्यक्ति को प्रसन्नता हुई और इस घटना पर आश्चर्य भी हुआ कि वह सब कैसे घटित हुआ? इस प्रकार बाबा ने हेमाड़पंत को स्वप्न में दिए गए अपने वचनों को पूर्ण किया।

इस चित्र की कथा का पूर्ण विवरण, अर्थात् अली मुहम्मद को चित्र कैसे प्राप्त हुआ और किस कारण से उन्होंने उसे लाकर हेमाडपंत को भेंट किया , इसका वर्णन अगले अध्याय में किया जाएगा।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ४१ ।।

चित्र की कथा, चिंदियों की चोरी और ज्ञानेश्वरी के पठन की कथा ।

गत अध्याय में वर्णित घटना के नौ वर्ष पश्चात् अली मुहम्मद हेमाड़पंत से मिले और वह पिछली कथा निम्नलिखित रुप में सुनाईः-

'' एक दिन बम्बई में घूमते-फिरते मैंने एक दुकानदार से बाबा का चित्र खरीदा। उसे फ्रेम कराया और अपने घर (मध्य बम्बई की बस्ती में) लाकर दीवाल पर लगा दिया। मुझे बाबा से स्वाभाविक प्रेम था। इसलिए मैं प्रतिदिन उनका श्री दर्शन किया करता था। जब मैंने आपको (हेमाडपंत को) वह चित्र भेंट किया, उसके तीन माह पूर्व मेरे पैर में सूजन आने के कारण शल्यचिकित्सा भी हुई थी। मैं अपने साले नूर मुहम्मद के यहाँ पड़ा हुआ था। खुद मेरे घर पर तीन माह से ताला लगा था और उस समय वहाँ पर कोई न था। केवल प्रसिद्ध बाबा अब्दुल रहमान, मौलाना साहेब, मुहम्मद हुसेन, साई बाबा, ताजुद्दीन बाबा और अन्य सन्त चित्रों के रुप में ही वहाँ विराजमान थे, परन्तु कालचक्र ने उन्हें भी न छोड़ा। मैं वहाँ (बम्बई) बीमार पड़ा हुआ था तो फिर मेरे घर में उन लोगों (फोटो) को कष्ट क्यों हो ? ऐसा समझ में आता है कि वे भी आवागमन (जन्म और मृत्यु) के चक्कर से मुक्त नहीं हैं ! अन्य चित्रों की गति तो उनके भाग्यानुसार ही हुई, परन्तु केवल श्री साईबाबा का ही चित्र कैसे बच निकला, इसका.रहस्योद्घाटन अभी तक कोई नहीं कर सका है! इससे श्री साईबाबा की सर्वव्यापकता और उनकी असीम शक्ति का पता चलता है।''

''कुछ वर्ष पूर्व मुझे मुहम्मद हुसेन थारिया टोपण से सन्त बाबा अब्दुल रहमान का चित्र प्राप्त हुआ था, जिसे मैंने अपने साले नूर मुहम्मद पीरभाई को दे दिया, जो गत आठ वर्षो से उसकी मेज पर पड़ा हुआ था। एक दिन उसकी दृष्टि इस चित्र पर पड़ी, तब उसने उसे फोटोग्राफर के पास ले जाकर उसकी बड़ी फोटो बनवाई और उसकी कापियाँ अपने कई रिश्तेदारों और मित्रों में वितरित कीं। उनमें से एक प्रति मुझे भी मिली थी, जिसे मैंने अपने घर की दीवार पर लगा रखा था । नूर मुहम्मद सन्त अब्दुल रहमान के शिष्य थे। जब सन्त अब्दुल रहमान साहेब का आम दरबार लगा हुआ था, तभी नूर मुहम्मद उन्हें वह फोटो भेंट करने के हेतु उनके समक्ष उपस्थित हुए। फोटो को देखते ही वे अति क्रोधित हो नूर मुहम्मद को मारने दौड़े तथा उन्हें बाहर निकाल दिया । तब उन्हें बड़ा दुःख और निराशा हुई । फिर उन्हें विचार आया कि मैंने इतना रुपया व्यर्थ ही खर्च किया, जिसका परिणाम अपने गुरु के क्रोध और अप्रसन्नता का कारण बना। उनके गुरु मूर्त्तिपूजा के विरोधी थे, इसलिए वे हाथ में फोटो लेकर अपोलो बन्दर पहुँचे और एक नाव किराए पर लेकर बीच समुद्र में वह फोटो विसर्जित कर आए । नूर मुहम्मद ने अपने सब मित्रों सम्बंधियों से भी प्रार्थना कर सब फोटो वापस बुला लिये (कुल छः फोटो थे) और एक मछुए के हाथ से बांद्रा के निकट समुद्र में विसर्जित करा दिए।''

''इस समय मैं अपने साले के घर पर ही था। तब नूर मुहम्मद ने मुझसे कहा कि यदि तुम सन्तों के सब चित्रों को समुद्र में विसर्जित करा दोगे तो तुम शीघ्र स्वस्थ हो जाओगे। यह सुनकर मैनेजर मेहता को अपने घर पर भेजा और उसके द्वारा घर में लगे हुए सब चित्रों को समुद्र में फिकवा दिया । दो माह पश्चात् जब मैं अपने घर वापस लौटा तो बाबा का चित्र पूर्ववत् लगा देखकर मुझे महान् आश्चर्य हुआ। मैं समझ न सका कि मेहता ने अन्य सब चित्र तो निकालकर विसर्जित कर दिए, पर केवल यही चित्र कैसे बच गया? तब मैंने तुरन्त ही उसे निकाल लिया और सोचने लगा कि कहीं मेरे साले की दृष्टि इस चित्र पर पड़ गई तो वह इसकी भी इतिश्री कर देगा । जब मैं ऐसा विचार कर ही रहा था कि इस चित्र कौन अच्छी तरह सँभाल कर रख सकेगा,तब स्वयं श्री साईबाबा ने सुझाया कि मौलाना इस्मू मुजावर के पास जाकर उनसे परामर्श करो और उनकी इच्छानुसार ही कार्य करो। मैने मौलाना साहेब से भेंट की और सब बातें उन्हें बतलाई । कुछ देर विचार करने के पश्चात् वे इस निर्णय पर पहुँचे

कि इस चित्र को आपको (हेमाडपंत) ही भेंट करना उचित है, क्योंकि केवल आप ही इसे उत्तम प्रकार से सँभालने के लिए सर्वथा सत्पात्र हैं। तब हम दोनों आप के घर आए और उपयुक्त समय पर ही यह चित्र आपको भेंट कर दिया। इस कथा से विदित होता है कि बाबा त्रिकालज्ञानी थे और कितनी कुशलता से समस्या हल कर भक्तों की इच्छाएँ पूर्ण किया करते थे। निम्नलिखित कथा इस बात का प्रतीक है कि आध्यात्मिक जिज्ञासुओं पर बाबा किस प्रकार स्नेह रखते तथा किस प्रकार उनके कष्ट निवारण कर उन्हे सुख पहुँचाते थे।

चिन्दियों की चोरी और ज्ञानेश्वरी का पठन

श्री बी.व्ही. देव, जो उस समय डहाणू के मामलेदार थे , को दीर्घकाल से अन्य धार्मिक ग्रन्थों के साथ-साथ ज्ञानेश्वरी के पठन की तीव्र इच्छा थी। (ज्ञानेश्वरी भगवद्गीता पर श्री ज्ञानेश्वर महाराज द्वारा रचित मराठी टीका है।) वे भगवतद्गीता के एक अध्याय का नित्य पाठ करते तथा थोड़ा बहुत अन्य ग्रन्थों का भी अध्ययन करते थे। परन्तु जब भी वे ज्ञानेश्वरी का पाठ प्रारम्भ करते तो उनके सामने अनेक बाधाएँ उपस्थित हो जातीं , जिससे वे पाठ करने से सर्वथा वंचित रह जाया करते थे। तीन मास की छुट्टी लेकर वे शिरड़ी पधारे और तत्पश्चात् वे अपने घर पौड में विश्राम करने के लिए भी गए। अन्य ग्रन्थ तो वे पढ़ा ही करते थे, परन्तु जब ज्ञानेश्वरी का पाठ प्रारम्भ करते तो नाना प्रकार के कलुषित विचार उन्हें इस प्रकार घेर लेते कि लाचार होकर उसका पठन स्थगित करना पड़ता था। बहुत प्रयत्न करने पर भी जब उनको केवल दो चार ओवियाँ पढ़ना भी दुष्कर हो गया, तब उन्होंने यह निश्चय किया कि जब दयानिधि श्री साई ही कृपा करके इस ग्रन्थ के पठन की आज्ञा देंगे, तभी उसका श्रीगणेश करुँगा । सन् १९१४ के फरवरी मास में वे सहकुटुम्ब शिरडी पधारे । तभी श्री. जोग ने उनसे पूछा कि क्या आप ज्ञानेश्वरी का नित्य पठन करते हैं? श्री. देव ने उत्तर दिया कि ''मेरी इच्छा तो बहुत है, परन्तु मैं ऐसा करने में सफलता नहीं पा रहा हूँ। अब तो जब बाबा की आज्ञा होगी, तभी प्रारम्भ करुँगा।'' श्री जोग ने सलाह दी कि ग्रन्थ की एक प्रति खरीद कर बाबा को भेंट करो और जब वे अपने करकमलों से स्पर्श कर उसे वापस लौंटा दें, तब उसका पठन प्रारम्भ कर देना। श्री. देव ने कहा कि '' मैं इस प्रणाली को श्रेयस्कर नहीं समझता, क्योंकि बाबा तो अन्तर्यामी हैं और मेरे हृदय की इच्छा उनसे कैसे गुप्त रह सकती है? क्या वे स्पष्ट शब्दों में आज्ञा देकर मेरी मनोकामना पूर्ण न करेंगे ?''

श्री. देव ने जाकर बाबा के दर्शन किए और एक रुपया दक्षिणा भेंट की। तब बाबा ने उनसे बीस रुपये दक्षिणा और माँगी, जो उन्होंने सहर्ष दे दिया। रात्रि के समय श्री. देव ने बालकराम से भेंट की और उनसे पूछा '' आपने किस प्रकार बाबा की भक्ति तथा कृपा प्राप्त की है?'' बालकराम ने कहा '' मैं दूसरे दिन आरती समाप्त होने के पश्चात् आपको पूर्ण वृत्तान्त सुनाऊँगा।'' दूसरे दिन जब श्री. देवसाहब दर्शनार्थ मस्जिद में आए तो बाबा ने फिर बीस रुपये दक्षिणा माँगी, जो उन्होंने सहर्ष भेट कर दी। मस्जिद में भीड़ अधिक होने के कारण वे एक ओर एकांत में जाकर बैठ गए। बाबा ने उन्हें बुलाकर अपने समीप बैठा लिया। आरती समाप्त होने के पश्चात् जब सब लोग अपने घर लौट गए, तब श्री . देव ने बालकराम से भेंटकर उनसे उनका पूर्व इतिहास जानने की जिज्ञासा प्रगट की तथा बाबा द्वारा प्राप्त उपदेश और ध्यानादि के संबंध में पुछताछ की। बालकराम इन सब बातों का उत्तर देने ही वाले थे कि इतने में चन्द्रू कोढ़ी ने आकर कहा कि श्री. देव को बाबा ने याद किया है। जब देव बाबा के पास पहुँचे तो उन्होंने प्रश्न किया कि वे किससे और क्या बातचीत कर रहे थे? श्री. देव ने उत्तर दिया कि वे बालकराम से उनकी कीर्त्ति का गुणगान श्रवण कर रहे थे। तब बाबा ने उनसे पुनः २५ रुपये दक्षिणा माँगी, जो उन्होंने सहर्ष दे दी। फिर बाबा उन्हें भीतर ले गए और अपना आसन ग्रहन करने के पश्चात् उन पर दोषारोपण करते हुए कहा कि '' मेरी अनुमति के बिना तुमने मेरी चिन्दियों की चोरी की है। '' श्री. देव ने उत्तर दिया '' भगवन्! जहाँ तक मुझे स्मरण है, मैंने ऐसा कोई कार्य नहीं किया है। '' परन्तु बाबा कहाँ मानने वाले थे? उन्होंने अच्छी तरह से ढूँढ़ने को कहा। उन्होंने खोज की, परन्तु कहीं कुछ भी न पाया । तब बाबा ने क्रोधित होकर कहा कि तुम्हारे अतिरिक्त यहाँ और कोई नहीं है। तुम्हीं चोर हो। तुम्हारे बाल तो सफेद हो गए है और इतने वृद्ध होकर भी तुम यहाँ चोरी करने को आये हो । इसके पश्चात् बाबा आपे से बाहर हो गए और उनकी आँखें क्रोध से लाल हो गईं । वे बुरी तरह से गालियाँ देने और डाँटने लगे । देव शान्तिपूर्वक सब कुछ सुनते रहे। वे मार पड़ने की भी आशंका कर रहे थे कि एक घण्टे के पश्चात् ही बाबा ने उनसे वाड़े को लौटने को कहा। वाड़े को लौटकर उन्होंने जो कुछ हुआ था, उसका पूर्ण विवरण जोग और बालकराम को सुनाया। दोपहर के पश्चात् बाबा ने सबके साथ देव को भी बुलाया और कहने लगे कि शायद मेरे शब्दों ने इस वृद्ध को पीड़ा पहुँचाई होगी। इन्होंने चोरी की है और इसे ये स्वीकार नहीं करते हैं। उन्होंने देव से पुनः बारह रुपये दक्षिणा माँगी, जो उन्हाने एकत्र करके सहर्ष भेंट करते हुए उन्हें नमस्कार किया । तब बाबा देव से कहने लगे कि '' तुम आजकल

क्या कर रहे हो ?'' देवने उत्तर दिया कि '' कुछ भी नहीं।'' तब बाबा ने कहा '' प्रतिदिन पोथी (ज्ञानेश्वरी) का पाठ किया करो। जाओ, वाड़े में बैठकर क्रमशः नित्य पाठ करो और जो कुछ भी तुम पढ़ो, उसका अर्थ दूसरों को प्रेम और भक्तिपूर्वक समझाओ। मैं तो तुम्हें सुनहरा शेला (दुपट्टा) भेंट देना चाहता हूँ, फिर तुम दूसरों के समीप चिन्दियों की आशा से क्यों जातें हो ? क्या तुम्हें यह शोभा देता है?''

पोथी पढ़ने की आज्ञा प्राप्त करके देव अति प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि मुझे इच्छित वस्तु की प्राप्ति हो गई है और अब मैं आनन्दपूर्वक पोथी (ज्ञानेश्वरी) पढ़ सकूँगा। उन्होने पुनः साष्टांग नमस्कार किया और कहा कि '' हे प्रभो! मैं आपकी शरण हूँ । आपका अबोध शिशु हूँ। मुझे पाठ में सहायता कीजिए। '' अब उन्हें चिन्दियों का अर्थ स्पष्टतया विदित हो गया था। उन्होंने बालकराम से जो कुछ पूछा था, वह चिन्दी स्वरुप था। इन विषयों में बाबा को इस प्रकार का कार्य रुचिकर नहीं था। क्योंकि वे स्वयं प्रत्येक शंका का समाधान करने को सदैव तैयार रहते थे। दूसरों से निरर्थक पूछताछ करना वे अच्छा नहीं समझते थे, इसलिए उन्होंने डाटा और क्रोधित हुए। देव ने इन शब्दों को बाबा का शुभ आशीर्वाद समझा तथा वे सन्तुष्ट होकर घर लौट गए।

यह कथा यहीं समाप्त नहीं होती। अनुमति देने के पश्चात् भी बाबा शान्त नहीं बैठे तथा एक वर्ष के पश्चात् ही वे श्री. देव के समीप गए और उनसे प्रगति के विषय में पूछताछ की। २ अप्रैल, सन् १९१४ गुरुवार को सुबह बाबा ने स्वप्न में देव से पूछा कि '' क्या तुम्हें पोथी समझ में आई?'' जब देव ने स्वीकारत्मक उत्तर न दिया तो बाबा बोले कि '' अब तुम कब समझोगे?'' देव की आँखों से टप-टप करके अश्रुपात होने लगा और वे रोते हुए बोले कि मैं निश्चयपूर्वक कह रहा हूँ कि हे भगवान् ! जब तक आपकी कृपा रुपी मेघवृष्टि नहीं होती, तब तक उसका अर्थ समझना मेरे लिए सम्भव नहीं है और यह पठन तो भारस्वरुप ही है। तब वे बोले कि मेरे सामने मुझे पढ़कर सुनाओ। तुम पढ़ने में अधिक शीघ्रता किया करते हो। फिर पूछने पर उन्होंने अध्यात्म विषयक अंश पढ़ने को कहा। देव पोथी लाने गए और जब उन्होंने नेत्र खोले तो उनकी निद्रा भंग हो गई थी । अब पाठक स्वयं ही इस बात का अनुमान कर लें कि देव को इस स्वप्न के पश्चात् कितना आनंद प्राप्त हुआ होगा?

(श्री. देव अभी (सन् १९४४) जीवित हैं और मुझे गत ४-५ वर्षो के पूर्व उनसे भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। जहाँ तक मुझे पता चला है, वह यही है कि वे अभी भी ज्ञानेश्वरी का पाठ किया करते हैं। उनका ज्ञान अगाध और पूर्ण है। यह उनके साई लीला के लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है।) (ता. १९.१०.१९४४)

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ४२।।

महासमाधि की ओर (१) भविष्य की आगाही -रामचन्द्र दादा पाटील और तात्या कोते पाटील की मृत्यु टालना - लक्ष्मीबाई शिन्दे को दान - अन्तिम क्षण। बाबा ने किस प्रकार समाधि ली, इसका वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

प्रस्तावना

गत अध्यायों की कथाओं से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि गुरुकृपा की केवल एक किरण ही भवसागर के भय से सदा के लिए मुक्त कर देती है तथा मोक्ष का पथ सुगम करके दुःख को सुख में परिवर्तित कर देती है। यदि सद्गुरु के मोहविनाशक पूजनीय चरणों का सदैव स्मरण करते रहोगे तो तुम्हारे समस्त कष्टों और भवसागर के दुःखों का अन्त होकर जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा हो जाएगा । इसलिए जो अपने कल्याणार्थ चिन्तित हों, उन्हें साई समर्थ के अलौकिक मधूर लीलामृत का पान करना चाहिए। ऐसा करने से उनकी मति शुद्ध हो जाएगी । प्रारम्भ में डॉक्टर पंडित का पूजन तथा किस प्रकार उन्होंने बाबा को त्रिपुंड लगाया, इसका उल्लेख मूल ग्रन्थ में किया गया है। इस प्रसंग का वर्णन ११ वे ं अध्याय में किया जा चुका है, इसलिए यहाँ उसका दुहराना उचित नहीं है।

भविष्य की आगाही

पाठको! आपने अभी तक केवल बाबा के जीवन-काल की ही कथाएँ सुनी हैं। अब आप ध्यानपूर्वक बाबा के निर्वाणकाल का वर्णन सुनिए। २८ सितम्बर, सन् १९१८ को बाबा को साधारण-सा ज्वर आया। यह ज्वर २-३ दिन तक रहा। इसके उपरान्त ही बाबा ने भोजन करना बिलकुल त्याग दिया। इससे उनका शरीर दिन-प्रतिदिन क्षीण एवं दुर्बल होने लगा। १७ दिनों के पश्चात् १५ अक्टूबर , सन् १९१८ को २ बजकर ३० मिनिट पर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया । (यह समय प्रो. जी.जी. नारके के तारीख ५-११-१९१८ के पत्र के अनुसार है, जो उन्होंने दादासाहेब खापर्डे को लिखा था और उस वर्ष की साईलीलापत्रिका के ७-८ पृष्ठ (प्रथम वर्ष) में प्रकाशित हुआ था) । इसके दो वर्षे पूर्व ही बाबा ने अपने निर्वाण के दिन का संकेत कर दिया था, परन्तु उस समय कोई भी समझ नहीं सका। घटना इस प्रकार है। विजया दशमी के दिन जब लोग सन्ध्या के समय ' सीमोल्लंघन' से लौट रहे थे तो बाबा सहसा ही क्रोधित हो गए। सिर पर का कपड़ा, कफनी और लँगोटी निकालकर उन्होंने उसके टुकड़े-टुकड़े करके जलती हुई धूनी में फेंक दिए। बाबा के द्वारा आहुति प्राप्त कर धूनी द्विगुणित प्रज्वलित होकर चमकने लगी और उससे भी कहीं अधिक बाबा के मुख-मंडल की कांति चमक रही थीं। वे पूर्ण दिगम्बर खड़े थे और उनकी आँखें अंगारे के समान चमक रही थीं । उन्होंने आवेश में आकर उच्च स्वर में कहा कि '' लोगो! यहाँ आओ, मुझे देखकर पूर्ण निश्चय कर लो कि मैं हिन्दू हूँ या मुसलमान ।'' सभी भय से काँप रहे थे। किसी को भी उनके समीप जाने का साहस न हो रहा था। कुछ समय बीतने के पश्चात् उनके भक्त भागोजी शिन्दे, जो महारोग से पीड़ित थे,साहस कर बाबा के समीप गए और किसी प्रकार उन्होंने लंगोटी बाँध दी और उसने कहा की, बाबा ! यह क्या बात है? देव ! आज दशहरा (सीमोल्लंघन) का त्योहार है। '' तब उन्होंने जमीन पर सटका पटकते हुए कहा कि यह मेरा सीमोल्लंघन है। लगभग ११ बजे तक भी उनका क्रोध शान्त न हुआ और भक्तों को चावड़ी जुलूस निकलने में सन्देह होने लगा। एक घण्टे के पश्चात् वे अपनी सहज स्थिति में आ गए और सदा की भाँति पोशाख पहनकर चावड़ी जुलूस में सम्मिलित हो गए, जिसका वर्णन पूर्व में ही किया जा चुका है। इस घटना द्वारा बाबा ने इंगित किया कि जीवन - रेखा पार करने के लिए दशहरा ही उचित समय है। परन्तु उस समय किसी को भी उसका असली अर्थ समझ में न आया। बाबा ने और भी अन्य संकेत किए, जो इस प्रकार हैं:-

रामचन्द्र दादा पाटील की मृत्यु टालना

कुछ समय के पश्चात् रामचन्द्र पाटील बहुत बीमार हो गए। उन्हें बहुत कष्ट हो रहा था। सब प्रकार के उपचार किए गए, परन्तु कोई लाभ न हुआ और जीवन से हताश होकर वे मृत्यु के अंतिम क्षणों की प्रतीक्षा करने लगे । तब एक दिन मध्याह्न रात्रि के समय बाबा अनायास ही उनके सिरहाने प्रगट हुए। पाटील उनके चरणों से लिपट कर कहने लगे कि मैने अपने जीवन की समस्त आशाएँ छोड़ दी हैं। अब कृपा कर मुझे इतना तो निश्चित बतलाइए कि मेरे प्राण अब कब निकलेंगे ? दया- सिन्धु बाबा ने कहा कि घबराओ नहीं । तुम्हारी हुण्डी वापस ले ली गई है और तुम शीघ्र ही स्वस्थ हो जाओगे । मुझे तो केवल तात्या का भय है कि सन् १९१८ में विजया दशमी के दिन उसका देहान्त हो जाएगा । किन्तु यह भेद किसी से प्रगट न करना और न ही उसे बतलाना । अन्यथा वह अधिक भयभीत हो जाएगा। रामचन्द्र अब पूर्ण स्वस्थ तो हो गए, परन्तु वे तात्या के जीवन के लिये निराश हुए। उन्हें ज्ञात था कि बाबा के शब्द कभी असत्य नहीं निकल सकते और दो वर्ष के पश्चात् ही तात्या इस संसार से विदा हो जाएगा। उन्होंने यह भेद बाला शिंपी के अतिरिक्त किसी से भी प्रगट न किया। केवल दो ही व्यक्ति- रामचंद्र दादा और बाला शिंपी तात्या के जीवन के लिये चिन्ताग्रस्त और दुःखी थे।

रामचंद्र ने शैया त्याग दी और वे चलने-फिरने लगे । समय तेजी से व्यतीत होने लगा। शके १८४० का भाद्रपद समाप्त होकर आश्विन मास प्रारम्भ होने ही वाला था कि बाबा के वचन पूर्णतः सत्य निकले । तात्या बीमार पड़ गए और उन्होंने चारपाई पकड़ ली। उनकी स्थिति इतनी गंभीर हो गई कि अब वे बाबा के दर्शनों को भी जाने में असमर्थ हो गए । इधर बाबा भी ज्वर से पीड़ित थे। तात्या का पूर्ण विश्वास बाबा पर था और बाबा का भगवान श्रीहरि पर, जो उनके संरक्षक थे। तात्या की स्थिति अब और अधिक चिन्ताजनक हो गई। वह हिलडुल भी न सकता था और सदैव बाबा का ही स्मरण किया करता था। इधर बाबा की भी स्थिति उत्तरोत्तर गंभीर होने लगी। बाबा द्वारा बतलाया हुआ विजया-दशमी का दिन भी निकट आ गया । तब रामचंद्र दादा और बाला शिंपी बहुत घबरा गए। उनके शरीर काँप रहे थे, पसीने की धारायें प्रवाहित हो रही थीं, कि अब तात्या का अन्तिम साथ है। जैसे ही विजया-दशमी का दिन आया, तात्या की नाड़ी की गति मन्द होने लगी और उसकी मृत्यु सन्निकट दिखलाई देने लगी। उसी समय एक विचित्र घटना घटी। तात्या की मृत्यु टल गई और उसके प्राण बच गये, परन्तु उसके स्थान पर बाबा स्वयं प्रस्थान कर गये और ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कि परस्पर हस्तान्तरण हो गया हो। सभी लोग कहने लगे कि बाबा ने तात्या के लिए प्राण त्यागे। ऐसा उन्होंने क्यों किया, यह वे ही जानें, क्योंकि यह बात हमारी बुद्धि के बाहर की है। ऐसा भी प्रतीत होती है कि बाबा ने अपने अन्तिम काल का संकेत तात्या का नाम लेकर ही किया था।

दूसरे दिन १६ अक्टुबर को प्रातःकाल बाबा ने दासगणू को पंढरपुर में स्वप्न दिया कि मस्जिद अर्रा करके गिर पड़ी है। शिरड़ी के प्रायः सभी तेली तम्बोली मुझे कष्ट देते थे। इसलिये मैंने अपना स्थान छोड़ दिया हैं। मैं तुम्हें यह सूचना देने आया हूँ कि कृपया शीघ्र वहाँ जाकर मेरे शरीर पर हर तरह के फूल इकट्ठा कर चढ़ाओ । दासगणू को शिरड़ी से भी एक पत्र प्राप्त हुआ और वे अपने शिष्यों को साथ लेकर शिरडी आये तथा उन्होंने बाबा की समाधि के समक्ष अखंड कीर्त्तन और हरिनाम प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने स्वयं फूलों की माला गूँथी और ईश्वर का नाम लेकर समाधि पर चढ़ाई । बाबा के नाम पर एक बृहद् भोज का भी आयोजन किया गया।

लक्ष्मीबाई को दान

विजयादशमी का दिन हिन्दुओं को बहुत शुभ है और सीमोल्लंघन के लिए बाबा द्वारा इस दिन का चुना जाना सर्वथा उचित ही है। इसके कुछ दिन पूर्व से ही उन्हें अत्यन्त पीड़ा हो रही थी, परन्तु आन्तरिक रुप में वे पूर्ण सजग थे। अन्तिम क्षण के पूर्व वे बिना किसी की सहायता लिए उठकर सीधे बैठ गए और स्वस्थ दिखाई पड़ने लगे। लोगों ने सोचा कि संकट टल गया और अब भय की कोई बात नहीं है तथा अब वे शीघ्र ही नीरोग हो जाएँगे । परन्तु वे तो जानते थे कि अब मैं शीघ्र ही विदा लेने वाला हूँ और इसलिये उन्होंने लक्ष्मीबाई शिन्दे को कुछ दान देने की इच्छा प्रगट की।

समस्त प्राणियों में बाबा का निवास

लक्ष्मीबाई एक उच्च कुलीन महिला थीं। वे मस्जिद में बाबा की दिन-रात सेवा किया करती थीं। केवल भगत म्हालसापति, तात्या और लक्ष्मीबाई के अतिरिक्त रात को मस्जिद की सीढ़ियों पर कोई नहीं चढ़ सकता था। एक

बार सन्ध्या समय जब बाबा तात्या के साथ मस्जिद में बैठे हुए थे, तभी लक्ष्मीबाई ने आकर उन्हें नमस्कार किया। तब बाबा कहने लगे कि '' अरी लक्ष्मी, मै अत्यन्त भूखा हूँ।'' वे यह कहकर लौट पड़ीं कि '' बाबा, थोड़ी देर ठहरो, मैं अभी आपके लिये रोटी लेकर आती हूँ।'' उन्होंने रोटी और साग लाकर बाबा के सामने रख दिया, जो उन्होंने एक भूखे कुत्ते को दे दिया। तब लक्ष्मीबाई कहने लगीं कि '' बाबा यह क्या? मैं तो शीघ्र गई और अपने हाथ से आपके लिए रोटी बना लाई । आपने एक ग्रास भी ग्रहण किये बिना उसे कुत्ते के सामने डाल दिया। तब आपने व्यर्थ ही मुझे यह कष्ट क्यों दिया ?'' बाबा ने उत्तर दिया कि ''व्यर्थ दुःख न करो। **कुत्ते की भूख शांत करना मुझे तृप्त करने के बराबर ही है। कुत्ते की भी तो आत्मा है।** प्राणी चाहे भले ही भिन्न आकृति -प्रकृति के हों उनमें कोई बोल सकते हैं और कोई मूक हैं, परन्तु भूख सबकी एक सदृश ही है। इसे तुम सत्य जानो कि **जो भूखों को भोजन कराता है, वह यथार्थ में मुझे ही भोजन कराता है।** यह एक अकाट्य सत्य है।'' इस साधारण-सी घटना के द्वारा बाबा ने एक महान् आध्यात्मिक सत्य की शिक्षा प्रदान की कि बिना किसी की भावनाओं को कष्ट पहुँचाये किस प्रकार उसे नित्य व्यवहार में लाया जा सकता है। इसके पश्चात् ही लक्ष्मीबाई उन्हें नित्य ही प्रेम और भक्तिपूर्वक दूध, रोटी व अन्य भोजन देने लगीं, जिसे वे स्वीकार कर बड़े चाव से खाते थे। वे उसमें से कुछ खाकर शेष लक्ष्मीबाई के द्वारा ही राधाकृष्ण माई के पास भेज दिया करते थे। इस उच्छिष्ट अन्न को वे प्रसाद स्वरुप समझ कर प्रेमपूर्वक पाती थीं । इस रोटी की कथा को असंबद्ध नहीं समझना चाहिये। इससे सिध्द होता है कि सभी प्राणियों में बाबा का निवास है, जो सर्वव्यापी , जन्म- मृत्यु से परे और अमर हैं।

बाबा ने लक्ष्मीबाई की सेवाओं को सदैव स्मरण रखा। बाबा उनको भुला भी कैसे सकते थे? देह-त्याग के बिल्कुल पूर्व बाबा ने अपनी जेब में हाथ डाला और पहले उन्होंने लक्ष्मी को पाँच रुपये और बाद में चार रुपये, इस प्रकार कुल नौ रुपये दिए। यह नौ की संख्या इस पुस्तक के अध्याय २१ में वर्णित नवविधा भक्ति की द्योतक है अथवा यह सीमोल्लंघन के समय दी जानेवाली दक्षिणा भी हो सकती है। लक्ष्मीबाई एक सुसंपन्न महिला थी। अतएव उन्हें रुपयों की कोई आवश्यकता नहीं थी। इस कारण संभव है कि बाबा ने उनका ध्यान प्रमुख रुप से श्रीमद्भागवत के स्कन्ध ११, अध्याय १० के श्लोक सं. ६ की ओर आकर्षित किया हो, जिसमें उत्कृष्ट कोटि के भक्त के नौ लक्षणो १ का वर्णन है, जिनमें से पहले ५ और बाद में ४ लक्षणों का क्रमशः प्रथम और द्वितीय चरणों में उल्लेख हुआ है। बाबा ने भी उसी क्रम का पालन किया (पहले ५ और बाद में ४; कुल ९) केवल ९ रुपये ही नहीं, बल्कि नौ के कई गुने रुपये लक्ष्मीबाई के हाथों में आये-गए होंगे, किन्तु बाबा के द्वारा प्रदत्त यह नौ (रुपये) का उपहार वह महिला सदैव स्मरण रखेगी।

१. अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौह्रदः।
असत्वरोऽर्थ जिज्ञासुर्नसूयुरमोघवाक्।।

अंतिम क्षण

बाबा सदैव सजग और चैतन्य रहते थे और उन्होंने अन्तिम समय भी पूर्ण सावधानी से काम लिया। अपने भक्तों के प्रति बाबा का ह्रदय प्रेम, ममता या मोह से ग्रस्त न हो जाय, इस कारण उन्होंने अन्तिम समय सबको वहाँ से चले जाने का आदेश दिया।

चिन्तामग्न काकासाहेब दीक्षित, बापूसाहेब बूटी और अन्य महानुभाव, जो मस्जिद में बाबा की सेवा में उपस्थित थे, उनको भी बाबा ने वाड़े में जाकर भोजन करके लौट आने को कहा। ऐसी स्थिति में वे बाबा को अकेला छोड़ना तो नहीं चाहते थे, परन्तु उनकी आज्ञा का उल्लंघन भी तो नहीं कर सकते थे। इसलिए इच्छा न होते हुए भी उदास और दुःखी ह्रदय से उन्हें वाड़े को जाना पड़ा । उन्हें विदित था कि बाबा की स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक है और इस प्रकार उन्हें अकेले छोड़ना उचित नहीं है। वे भोजन करने के लिए बैठे तो, परन्तु उनके मन कहीं और (बाबा के साथ) थे। अभी भोजन समाप्त भी न हो पाया था कि बाबा के नश्वर शरीर त्यागने का समाचार उनके पास पहुँचा और वे अधपेटे ही अपनी अपनी थाली छोड़कर मस्जिद की ओर भागे तथा जाकर देखा कि बाबा सदा के लिए बयाजी आपा कोते की गोद में विश्राम कर रहे हैं। न वे नीचे लुढ़के और न शैया पर ही लेटे, अपने ही आसन पर शान्तिपूर्वक बैठे हुए और अपने ही हाथों से दान देते हुए उन्होंने यह मानव - शरीर त्याग दिया। सन्त स्वयं ही देह धारण करते तथा कोई निश्चित ध्येय लेकर इस संसार में प्रगट होते हैं और जब ध्येय

पूर्ण हो जाता है तो वे जिस सरलता और आकस्मिकता के साथ प्रगट होते हैं, उसी प्रकार लुप्त भी हो जाया करते हैं।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु

सप्ताह पारायणः षष्ठ विश्राम

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ४३-४४ ।।

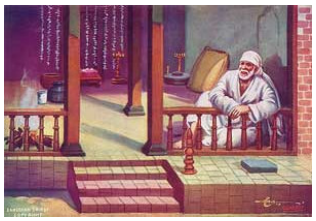

महासमाधि की ओर (२)

पूर्व तैयारी-समाधि मन्दिर, ईट का खंडन, ७२ घण्टे की समाधि, जोग का संन्यास, बाबा के अमृततुल्य वचन।

इन ४३ और ४४ अध्यायों में बाबा के निर्वाण का वर्णन किया गया है, इसलिए वे यहाँ संयुक्त रुप में लिखे जा रहे हैं।

पूर्व तैयारीः समाधि मंदिर

हंन्दुओं में यह प्रथा प्रचलित है कि जब किसी मनुष्य का अन्तकाल निकट आ जाता है तो उसे धार्मिक ग्रन्थ आदि पढ़कर सुनाए जाते हैं। इसका मुख्य कारण केवल यही है कि जिससे उसका मन सांसारिक झंझटों से मुक्त होकर आध्यात्मिक विषयों में लग जाए और वह प्राणी कर्मवश अगले जन्म में जिस योनि को धारण करे, उसमें उसे सद्‌गति प्राप्त हो। सर्वसाधारण को यह विदित ही है कि जब राजा परीक्षित को एक बृह्मर्षि पुत्र ने शाप दिया और एक सप्ताह के पश्चात् ही उनका अन्तकाल निकट आया तो महात्मा शुकदेव ने उन्हें उस सप्ताह में श्रीमद्‌भागवत पुराण का पाठ सुनाया, जिससे उनको मोक्ष की प्राप्ति हुई। यह प्रथा अभी भी अपनाई जाती है। महानिर्वाण के समय गीता, भागवत और अन्य ग्रन्थों का पाठ किया जाता है। बाबा तो स्वयं अवतार थे, इसलिए उन्हें बाह्य साधनों की आवश्यकता नहीं थी; परन्तु केवल दूसरों के सामने उदाहरण प्रस्तुत करने के हेतु ही उन्होंने इस प्रथा की उपेक्षा नहीं की। जब उन्हें विदित हो गया कि मैं अब शीघ्र इस नश्वर देह का त्याग करुँगा, तब उन्होंने श्री. वझे को 'रामविजय' प्रकरण सुनाने की आज्ञा दी। श्री. वझे ने एक सप्ताह प्रतिदिन पाठ सुनाया। तत्पश्चात् ही बाबा ने उन्हें आठों प्रहर पाठ करने की आज्ञा दी। श्री. वझे ने उस अध्याय की द्वितीय आवृत्ति तीन दिन में पूर्ण कर दी और इस प्रकार ११ दिन बीत गए। फिर तीन दिन और उन्होंने पाठ किया। अब श्री. वझे बिलकुल थक गये। इसलिए उन्हें विश्राम करने की आज्ञा हुई। बाबा अब बिलकुल शान्त बैठ गये और आत्मस्थित होकर वे अन्तिम क्षण की प्रतीक्षा करने लगे। दो-तीन दिन पूर्व ही प्रातःकाल से बाबा ने भिक्षाटन करना स्थगित कर दिया और वे मस्जिद में ही बैठे रहने लगे। वे अपने अन्तिम क्षण के लिए पूर्ण सचेत थे, इसलिये वे अपने भक्तों को धैर्य तो बँधाते रहते, पर उन्होंने किसी से भी अपने महानिर्वाण का निश्चित समय प्रगट न किया। इन दिनों काकासाहेब दीक्षित और श्रीमान् बूटी बाबा के साथ मस्जिद में नित्य ही भोजन करते थे। महानिर्वाण के दिन (१५ अक्टूबर को) आरती समाप्त होने के पश्चात् बाबा ने उन लोगों को भी अपने निवासस्थान पर ही भोजन करके लौटने को कहा। फिर भी लक्ष्मीबाई शिंदे, भागोजी शिंदे, बयाजी, लक्ष्मण बाला शिम्पी और नानासाहेब निमोणकर वहीं रह गए। शामा नीचे मस्जिद की सीढ़ियों पर बैठे थे। लक्ष्मीबाई शिन्दे को ९ रुपयें देने के पश्चात् बाबा ने कहा कि ''मुझे मस्जिद में अब अच्छा नहीं लगता है, इसलिए मुझे बूटी के पत्थर वाड़े में ले चलो, जहाँ मैं सुखपूर्वक रहूँगा।'' ये ही अन्तिम शब्द उनके श्रीमुख से निकले। इसी समय बाबा बयाजी के शरीर की ओर लटक गए और अन्तिम श्वास छोड़ दी। भागोजी ने देखा कि बाबा की श्वास रुक गई है, तब उन्होंने नानासाहेब निमोणकर को पुकार कर यह बात कही। नानासाहेब ने कुछ जल लाकर बाबा के श्रीमुख में डाला, जो बाहर लुढ़क आया। तभी उन्होंने जोर से आवाज लगाई '' अरे! देव! '' तब बाबा ऐसे दिखाई पड़े, जैसे उन्होंने धीरे से नेत्र खोलकर धीमे स्वर में ' ओह' कहा हो। परन्तु अब स्पष्ट विदित हो गया कि उन्होंने सचमुच ही शरीर त्याग दिया है।

''बाबा समाधिस्थ हो गए'' - यह हृदयविदारक दुःसंवाद दावानल की भाँति तुरन्त ही चारों ओर फैल गया। शिरड़ी के सब नर-नारी और बालकगण मस्जिद की ओर दौड़े। चारों ओर हाहाकार मच गया। सभी के हृदय पर वज्रपात हुआ। उनके हृदय विचलित होने लगे। कोई जोर-जोर से चिल्लाकर रुदन करने लगे। कोई सड़कों पर लोटने लगा और बहुत से बेसुध होकर वहीं गिर पड़े। प्रत्येक की आँखों से झर-झर ऑसू गिर रहे थे। प्रलय काल के वातावरण में तांडव नृत्य का जैसा दृश्य उपस्थित हो जाता है, वही गति शिरड़ी के नर -नारियों के रुदन से

उपस्थित हो गई। उनके इस महान् दुःख में कौन आकर उन्हें धैर्य बँधाता, जब कि उन्होंने साक्षात् सगुण परब्रह्म का सान्निध्य खो दिया था? इस दुःख का वर्णन भला कर ही कौन सकता है?

''अब कुछ भक्तों को श्री साई बाबा के वचन याद आने लगे। किसी ने कहा कि महाराज(साई बाबा) ने अपने भक्तों से कहा था कि '' भविष्य में वे आठ वर्ष के बालक के रुप में पुनः प्रगट होंगे।'' ये एक सन्त के वचन हैं और इसलिए किसी को भी उन पर सन्देह नहीं करना चाहिए, क्योंकि कृष्णावतार में भी चक्रपाणि (भगवान विष्णु) ने ऐसी ही लीला की थी। श्रीकृष्ण माता देवकी के सामने आठ वर्ष की आयु वाले एक बालक के रुप में प्रगट हुए, जिनका दिव्य तेजोमय स्वरुप था और जिनके चारों हाथों में आयुध (शंख, चक्र, गदा और पद्म) सुशोभित थे। अपने उस अवतार में भगवान श्रीकृष्ण ने भू-भार हलका किया था। साई बाबा का यह अवतार अपने भक्तों के उत्थान के लिए हुआ था। सन्तों की कार्यप्रणाली अगम्य होती है। साई बाबा का अपने भक्तों के साथ यह संपर्क केवल एक ही पीढ़ी का नहीं, बल्कि यह उनका पिछले कई जन्मों का संपर्क है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार का प्रेम-सम्बन्ध विकसित करके महाराज (श्री साई बाबा) दौरे पर चले गये हैं और भक्तों को दृढ़ विश्वास है कि शीघ्र ही पुनः वापस आ जाएँगे।''

अब समस्या उत्पन्न हुई कि बाबा के शरीर की अन्तिम क्रिया किस प्रकार की जाए? कुछ यवन लोग कहने लगे कि उनके शरीर को कब्रिस्तान में दफन कर उसके ऊपर एक मकबरा बना देना चाहिए। खुशालचन्द और अमीर शक्कर की भी यही धारणा थी, परंतु ग्राम्य अधिकारी श्री. रामचंद्र पाटील ने दृढ़ और निश्चयात्मक स्वर में कहा कि '' तुम्हारी निर्णय मुझे मान्य नहीं है। शरीर को वाड़े के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी नहीं रखा जाएगा।'' इस प्रकार लोगों में मतभेद उत्पन्न हो गया और वह वादविवाद ३६ घण्टों तक चलता रहा।
बुधवार के दिन प्रातःकाल बाबा ने लक्ष्मण मामा जोशी को स्वप्न दिया और उन्हें अपने हाथ से खींचते हुए कहा कि''शीघ्र उठो, बापूसाहेब समझता है कि मैं मृत हो गया हूँ। इसलिए वह तो आयेगा नहीं। तुम पूजन और काकड़ आरती करो।'' लक्ष्मण मामा ग्राम के ज्योतिषी, शामा के मामा तथा एक कर्मठ ब्राह्मण थे। वे नित्य प्रातःकाल बाबा का पूजन किया करते, तत्पश्चात् ही ग्राम देवियों और देवताओं का। उनकी बाबा पर दृढ़ निष्ठा थी, इसलिए इस दृष्टांत के पश्चात् वे पूजन की समस्त सामग्री लेकर वहाँ आये और ज्यों ही उन्होंने बाबा के मुख का आवरण हटाया तो उस निर्जीव अलौकिक महान् प्रदीप्त प्रतिभा के दर्शन कर वे स्तब्ध रह गए, मानो हिमांशु ने उन्हें अपने पाश में आबद्ध करके जड़वत् बना दिया हो। स्वप्न की स्मृति ने उन्हें अपना कर्त्तव्य करने को प्रेरित कर दिया। फिर उन्होंने मौलवियों के विरोध की कुछ भी चिंता न कर विधिवत् पूजन और कांकड़ आरती की। दोपहर को बापूसाहेब जोग भी अन्य भक्तों के साथ आए और सदैव की भाँति मध्याह्न की आरती की।

बाबा के अन्तिम श्री-वचनों को आदरपूर्वक स्वीकार करके लोगों ने उनके शरीर को बूटी वाड़े में ही रखने का निश्चय किया और वहाँ का मध्य भाग खोदना आरम्भ कर दिया। मंगलवार की सन्ध्या को राहाता से सब-इन्स्पेक्टर और भिन्न-भिन्न स्थानों से अनेक लोग वहाँ आकर एकत्र हुए। सब लोगों ने उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन प्रातःकाल बम्बई से अमीर भाई और कोपरगाँव से मामलेदार भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने देखा कि लोग अभी भी एकमत नहीं है। तब उन्होंने मतदान करवाया और पाया कि अधिकांश लोगों का बहुमत वाड़े के पक्ष में ही है। फिर भी वे इस विषय में कलेक्टर की स्वीकृति अति आवश्यक समझते थे। तब काकासाहेब स्वयं अहमदनगर जाने को उद्यत् हो गए, परन्तु बाबा की प्रेरणा से विपक्षियों ने भी प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया और उन सबने मिलकर अपना मत भी वाड़े के ही पक्ष में दिया। अतःबुधवार की सन्ध्या को बाबा का पवित्र शरीर बड़ी धूमधाम और समारोह के साथ वाड़े में लाया गया और विधिपूर्वक उस स्थान पर समाधि बना दी गई, जहाँ 'मुरलीधर' की मूर्ति स्थापित होने को थी। सच तो यह है कि बाबा 'मुरलीधर' बन गए और वाड़ा 'समाधि-मन्दिर' तथा भक्तों का एक पवित्र देवस्थान, जहाँ अनेकों भक्त आया जाया करते थे और अभी भी नित्य-प्रति वहाँ आकर सुख और शांन्ति प्राप्त करते हैं। बालासाहेब भाटे और बाबा के अनन्य भक्त श्री. उपासनी ने बाबा की विधिवत् अन्तिम क्रिया की।
जैसा प्रोफेसर नारके को देखने में आया, यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि बाबा का शरीर ३६ घण्टे के उपरांत भी जड़ नहीं हुआ और उनके शरीर का प्रत्येक अवयव लचीला (Elastic) बना रहा, जिससे शरीर पर से कफनी बिना चीरे हुए सरलता से निकाली जा सकी।

ईंट का खण्ड

बाबा के निर्वाण के कुछ समय पूर्व एक अपशकुन हुआ, जो इस घटना की पूर्वसूचना-स्वरुप था। मस्जिद में एक पुरानी ईंट थी, जिसपर बाबा अपना हाथ टेककर रखते थे। रात्रि के समय बाबा उस पर सिर रखकर शयन किया करते थे। यह कार्यक्रम अनेक वर्षों तक चला। एक दिन बाबा की अनुपस्थिति में एक बालक ने मस्जिद में झाड़ू लगाते समय वह ईंट अपने हाथ में उठाई। दुर्भाग्यवश वह ईंट उसके हाथ से गिर पड़ी और उसके दो टुकड़े हो गए। जब बाबा को इस बात की सूचना मिली तो उन्हें उसका बड़ा दुःख हुआ और वे कहने लगे कि ''यह ईंट नहीं फूटी है, मेरा भाग्य ही फूटकर छिन्न-भिन्न हो गया है। यह तो मेरी जीवनसंगिनी थी और इसको अपने पास रखकर मैं आत्म-चिंतन किया करता था। यह मुझे अपने प्राणों के समान प्रिय थी और उसने आज मेरा साथ छोड़ दिया है।'' कुछ लोग यहाँ शंका कर सकते हैं कि बाबा को ईंट जैसी एक तुच्छ वस्तु के लिए इतना शोक क्यों करना चाहिए? इसका उत्तर हेमाड़पन्त इस प्रकार देते हैं कि सन्त जगत के उद्धार तथा दीन और अनाश्रितों के कल्याणार्थ ही अवतीर्ण होते हैं। जब वे नरदेह धारण करते हैं और जनसम्पर्क में आते हैं तो वे इसी प्रकार आचरण किया करते हैं, अर्थात् बाह्य रुप से वे अन्य लोगों के समान ही हँसते, खेलते और रोते हैं, परन्तु आन्तरिक रुप से वे अपने अवतार-कार्य और उसके ध्येय के लिए सदैव सजग रहते हैं।

७२ घण्ट की समाधि

इसके ३२ वर्ष पूर्व भी बाबा ने अपनी जीवन-रेखा पार करने का एक प्रयास किया था। १८८६ में मार्गशीर्ष को पूर्णिमा के दिन बाबा को दमा से अधिक पीड़ा हुई और इस व्याधि से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने अपने प्राण ब्रह्मांड में चढ़ाकर समाधि लगाने का विचार किया। अतएव उन्होंने भगत म्हालसापति से कहा कि '' तुम मेरे शरीर की तीन दिन तक रक्षा करना और यदि मैं वापस लौट आया तो ठीक ही है, नहीं तो उस स्थान(एक स्थान को इंगित करते हुए) पर मेरी समाधि बना देना और दो ध्वजाएँ चिह्न स्वरुप फहरा देना।'' - ऐसा कहकर बाबा रात में लगभग दस बजे पृथ्वी पर लेट गए। उनका श्वासोच्छ्वास बन्द हो गया और ऐसा दिखाई देने लगा कि जैसे उनके शरीर में प्राण ही न हों। सभी लोग, जिनमें ग्रामवासी भी थे, वहाँ एकत्रित हुए और शरीर परीक्षण के पश्चात् शरीर को उनके द्वारा बताए हुए स्थान पर समाधिस्थ कर देने का निश्चय करने लगे। परन्तु भगत म्हालसापति ने उन्हें ऐसा करने से रोका और उनके शरीर को अपनी गोद में रखकर वे तीन दिन तक उसकी रक्षा करते रहे। तीन दिन व्यतीत होने पर रात को लगभग तीन बजे प्राण लौटने के चिन्ह दिखलाई पड़ने लगे। श्वासोच्छ्वास पुनःचालू हो गया और उनके अंग-प्रत्यंग हिलने लगे। उन्होंने नेत्र खोल दिये और करवट लेते हुए वे पुनः चेतना में आ गए।

इस प्रसंग तथा अन्य प्रसंगों पर दृष्टिपात कर अब हम यह पाठकों पर छोड़ते हैं कि वे ही इसका निश्चय करें कि क्या बाबा अन्य लोगों की भाँति ही साढ़े तीन हाथ लम्बे एक देहधारी मानव थे, जिस देह को उन्होंने कुछ वर्षों तक धारण करने के पश्चात् छोड़ दिया, या वे स्वयं आत्मज्योतिस्वरुप थे। पंच महाभूतों से शरीर निर्मित होने के कारण उसका नाश और अन्त तो सुनिश्चित है, परन्तु जो सद्वस्तु(आत्मा) अन्तःकरण में है, वही यथार्थ में सत्य है। उसका न रुप है, न अंत है और न नाश। यही शुद्ध चैतन्य घन या ब्रह्म-इंद्रियों और मन पर शासन और नियंत्रण रखने वाला जो तत्त्व है, वही 'साई' है, जो संसार के समस्त प्राणियों में विद्यमान है और जो सर्वव्यापी है। अपना अवतार-कार्य पूर्ण करने के लिए ही उन्होंने देह-धारण किया था और वह कार्य पूर्ण होने पर उन्होंने उसे त्याग कर पुनःअपना शाश्वत और अनंत स्वरुप धारण कर लिया। श्री दत्तात्रेय के पूर्ण अवतार-गाणगापुर के श्रीनृसिंह सरस्वती के समान श्री साई भी सदैव वर्त्तमान हैं। उनका निर्वाण तो एक औपचारिक बात है। वे जड़ और चेतन सभी पदार्थों में व्याप्त हैं तथा सर्व भूतों के अन्तःकरण के संचालक और नियंत्रणकर्त्ता हैं। इसका अभी भी अनुभव किया जा सकता है और अनेकों के अनुभव में आ भी चुका है, जो अनन्य भाव से उनके शरणागत हो चुके है और जो पूर्ण अंतःकरण से उनके उपासक हैं।

यद्यपि बाबा का स्वरुप अब देखने को नहीं मिल सकता है, फिर भी यदि हम शिरड़ी को जाएँ तो हमें वहाँ उनका जीवित-सदृश चित्र मस्जिद (द्वारकामाई) को शोभायमान करते हुए अब भी देखने में आएगा। यह चित्र बाबा के एक प्रसिद्ध भक्त-कलाकार श्री. शामराव जयकर ने बनाया था। एक कल्पनाशील और भक्त दर्शक को यह चित्र अभी भी बाबा के दर्शन के समान ही सन्तोष और सुख पहुँचाता है। बाबा अब देह में स्थित नहीं हैं, परन्तु वे सर्वभूतों में व्याप्त हैं और भक्तों का कल्याण पूर्ववत् ही करते रहे हैं, करते रहेंगे, जैसा कि वे सदेह रहकर किया करते थे। बाबा सन्तों के समान अमर हैं, चाहे वे नरदेह धारण कर लें, जो कि एक आवरण मात्र है, परन्तु वे तो स्वयं भगवान श्री हरि हैं, जो समय-समय पर भूतल पर अवतीर्ण होते हैं।

बापूसाहेब जोग का संन्यास

जोग के संन्यास की चर्चा कर हेमाड़पन्त यह अध्याय समाप्त करते हैं। श्री. सखाराम हरी उर्फ बापूसाहेब जोग पूने के प्रसिद्ध वारकरी विष्णु बुवा जोग के काका थे। वे लोक कर्म विभाग (P.W.D.) में पर्यवेक्षक (Supervisor) थे। सेवा-निवृत्ति के पश्चात् वे सपत्नीक शिरड़ी में आकर रहने लगे। उनके कोई सन्तान न थी। पति और पत्नी दोनों की ही साई चरणों में अटल श्रद्धा थी। वे दोनों अपने दिन उनकी पूजा और सेवा करने में ही व्यतीत किया करते थे। मेघा की मृत्यु के पश्चात् बापूसाहेब जोग ने बाबा की महासमाधि पर्यन्त मस्जिद और चावड़ी में आरती की। उनको साठे वाड़ा में श्री ज्ञानेश्वरी और एकनाथी भागवत का वाचन तथा उसका भावार्थ श्रोताओं को समझाने का कार्य भी दिया गया था। इस प्रकार अनेक वर्षो तक सेवा करने के पश्चात् उन्होंने एक बार बाबा से प्रार्थना की कि- '' हे मेरे जीवन के एकमात्र आधार! आपके पूजनीय चरणों का दर्शन कर समस्त प्राणियों को परम शांति का अनुभव होता है। मैं इन श्रीचरणों की अनेक वर्षों से निरंतर सेवा कर रहा हूँ, परन्तु क्या कारण है कि आपके चरणों की छाया के सन्निकट होते हुए भी मैं उनकी शीतलता से वंचित हूँ। मेरे इस जीवन में कौन-सा सुख है, यदि मेरा चंचल मन शान्त और स्थिर बनकर आपके श्रीचरणों में मग्न नहीं होता? क्या इतने वर्षो का मेरा सन्तसमागम व्यर्थ ही जाएगा? मेरे जीवन में वह शुभ घड़ी कब आएगी, जब आपकी मुझपर कृपा दृष्टि होगी?''

भक्त की प्रार्थना सुनकर बाबा को दया आ गई। उन्होंने उत्तर दिया कि थोड़े ही दिनों में अब तुम्हारे अशुभ कर्म समाप्त हो जायेंगे तथा पाप और पुण्य जलकर शीघ्र ही भस्म हो जाएँगे। मैं तुम्हें उस दिन ही भाग्यशाली समझूँगा, जिस दिन तुम ऐन्द्रिक-विषयों को तुच्छ जानकर समस्त पदार्थों से विरक्त होकर पूर्ण अनन्य भाव से ईश्वर भक्ति कर संन्यास धारण कर लोगे। कुछ समय पश्चात् बाबा के वचन सत्य सिद्ध हुए। उनकी स्त्री का देहान्त हो जाने पर उनकी अन्य कोई आसक्ति शेष न रही। वे अब स्वतंत्र हो गये और उन्होंने अपनी मृत्यु के पूर्व संन्यास धारण कर अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

बाबा के अमृततुल्य वचन

दयानिधि कृपालु श्री साई समर्थ ने मस्जिद (द्वारिकामाई) में अनेक बार निम्नलिखित सुधोपम वचन कहे थेः-

''**जो मुझे अत्यधिक प्रेम करता है, वह सदैव मेरा दर्शन पाता है। उसके लिए मेरे बिना सारा संसार ही सूना है। वह केवल मेरा ही लीलागान करता है। वह सतत मेरा ही ध्यान करता है और सदैव मेरा ही नाम जपता है। जो पूर्ण रुप से मेरी शरण में आ जाता है और सदा मेरा ही स्मरण करता है, अपने ऊपर उसका यह ऋण मैं उसे मुक्ति (आत्मोपलब्धि)प्रदान करके चुका दूँगा। जो मेरा ही चिन्तन करता है और मेरा प्रेम ही जिसकी भूख-प्यास है और जो पहले मुझे अर्पित किए बिना कुछ भी नहीं खाता, मैं उसके अधीन हूँ। जो इस प्रकार मेरी शरण में आता है,वह मुझसे मिलकर उसी तरह एकाकार हो जाता है, जिस तरह नदियाँ समुद्र से मिलकर तदाकार हो जाती हैं। अतएव महत्ता और अहंकार का सर्वथा परित्याग करके तुम्हें मेरे प्रति, जो तुम्हारे हृदय में आसीन है; पूर्ण रुप से समर्पित हो जाना चाहिए।**''

यह 'मैं' कौन है?

श्री साईबाबा ने अनेक बार समझाया कि यह 'मैं' कौन है। इस 'मैं' को ढूँढ़ने के लिए अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे नाम और आकार से परें 'मैं' तुम्हारे अन्तःकरण और समस्त प्राणियों में चैतन्यधन स्वरुप में विद्यमान हूँ और यही 'मैं' का स्वरुप है। ऐसा समझकर **तुम अपने तथा समस्त प्राणियों में मेरा ही दर्शन करो। यदि तुम इसका नित्य प्रति अभ्यास करोगे तो तुम्हें मेरी सर्वव्यापकता का अनुभव शीघ्र हो जायेगा और मेरे साथ अभिन्नता प्राप्त हो जाएगी।**

अतः हेमाड़पन्त पाठकों को नमन कर उनसे प्रेम और आदरपूर्वक विनम्र प्रार्थना करते हैं कि उन्हें समस्त देवताओं, सन्तों और भक्तों का आदर करना चाहिए। बाबा सदैव कहा करते थे कि **जो दूसरों को पीड़ा पहुँचाता है, वह मेरे हृदय को दुःख देता है तथा मुझे कष्ट पहुँचाता है। इसके विपरीत जो स्वयं कष्ट सहन करता है, वह मुझे अधिक प्रिय है।** बाबा समस्त प्राणियों में विद्यमान हैं और उनकी हर प्रकार से रक्षा करते हैं। समस्त जीवों से प्रेम करो, यही उनकी आंतरिक इच्छा है। इस प्रकार का विशुद्ध अमृतमय स्त्रोत उनके श्री मुख से सदैव झरता

रहता था। अतः जो प्रेमपूर्वक बाबा का लीलागान करेंगे या उन्हें भक्तिपूर्वक श्रवण करेंगे, उन्हें 'साई' से अवश्य अभिन्नता प्राप्त होगी।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।।